श्रीमद्भगवद्गीता
पद्यानुवाद

श्रीमद्भगवद्गीता

(हिन्दीपद्यानुसरण)

अनुवादक :

पं० चन्द्रदेव पाण्डेय

प्रकाशक :

श्री प्रह्लाद राय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र

(झुनझुनवाला चैरिटी ट्रस्ट द्वारा संचालित)

झुनझुनवाला भवन, नाटी इमली, वाराणसी

दूरभाष-२११३१२, २१२३१३

प्रकाशक :

श्री प्रह्लाद राय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र

(झुनझुनवाला चैरिटी ट्रस्ट द्वारा संचालित)

झुनझुनवाला भवन, नाटी इमली, वाराणसी

दूरभाष- २११३१२, २११३१३

सहयोगी :

शिवनारायण झुनझुनवाला

स्मृति फेब्रिक्स

८२४, कटरा नील, पहला माला

चाँदनी चौक, दिल्ली-६

दूरभाष : २९४२३५८, ३९३५९०८

पुस्तक प्राप्ति का स्थान :

१. झुनझुनवाला भवन, नाटी इमली, वाराणसी

२. स्मृति फेब्रिक्स, ८२४, कटरानील, चाँदनी चौक, दिल्ली-६

३. बाबू ठाकुर प्रसाद बुक्सेलर, खोवागली, वाराणसी

प्रथम सं० २००१ ई०

मूल्य : ३०.००

मुद्रक :

मुकुन्द लाल अग्रवाल

बाम्बे मुद्रण प्रेस

नाटी इमली, वाराणसी

श्री मन्मंगलमूर्तयेनमः

नम्र निवेदन (प्राक्कथन)

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ।।

(म०भा०भी०प०)

संसार में अब तक जितने भी ज्ञानोपदेश किये गये हैं चाहे वे किसी देश या काल के क्यों न हों संतों और विद्वानों के द्वारा ही किये गये हैं। परमात्मा को छोड़कर किसी का भी ज्ञान सम्पूर्ण और पूर्ण सत्य नहीं हो सकता। अतएव उन सबकी सत्यता एवं पूर्णता संदिग्ध ही है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में वर्णित ज्ञान और उपदेश किसी महापुरुष की बुद्धि की अपनी उपज नहीं है अपितु उन्हें स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर सभी देश कालोपयुक्त, सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु अपने श्रीमुख से किया है। वही श्रीमद्भगवद्गीता में यथावत रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है। इसी से अत्यन्त आदर से इसे श्रीमद्भगवद्गीता कहा गया है।

वेदों के शीर्ष रूप में स्वीकृत उपनिषदों का सम्पूर्ण सार अंश ही बहुत थोड़े से शब्दों में गीता के रूप में प्रस्तुत है। यथा:-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

(गी०मा०स्क०पु०)

यह सारे संशय ग्रन्थियों को भेदन करने वाला अति रहस्यमय ग्रन्थ है। जितना भी इसका अध्ययन करते जाइये उतनी ही नवीनता और प्रवीणता प्राप्त होती जायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि अनन्त ज्ञान राशि संकलित करके एक स्थान पर ही रख दी गई है। परमात्मा श्रीकृष्ण ने इसको अपना हृदय कहा है और सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, पालन और संहार रूप कर्म करते भी इसी ज्ञान के द्वारा निर्लिप्त रहना स्वीकार किया है। यथा—

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे परमं धनम् ।
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम् ।।

(स्कन्द पुराण गी० मा० खं० का)

गीता एक अमर ग्रन्थ है, संसार में विकसित कही जाने वाली प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। विदेशों में भी लोग इसका मनन और अनुसरण करके लाभ उठा रहे हैं और इसको सही जीवन जीने का प्रेरणाश्रोत स्वीकार कर रहे हैं। भारतीय भाषाओं में इसके शताधिक विशिष्ट भाष्य हो चुके हैं और बहुत सी टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। परन्तु उनमें से कुछ तो क्लिष्ट हैं जिन्हें सामान्य जन को समझना ही कठिन है। कुछ इतनी वृहदाकार हैं जिसको इस व्यस्त युग में पढ़ और समझ पाना भी सुगम नहीं है। और कुछ आचार्यों ने अपनी ही मान्य विचार धाराओं के अनुसार उसका भाष्य कर डाला है इस भाँति इसके मूल अभिप्राय ही अनेक विधाओं में परिभाषित हो गये हैं जिससे सामान्य जन लाभान्वित कम और भ्रमित अधिक हो जाते हैं।

श्री भगवान के उपदेशों को श्री व्यास जी ने तत्कालीन प्रचलित संस्कृत भाषा में छन्दबद्ध करके महानग्रन्थ महाभारत में ग्रथित कर दिया। यद्यपि संस्कृत हम भारतीयों की अपनी पारम्परिक एवं विश्व की सबसे परिमार्जित, आकर्षक, धनी भाषा है और सब प्रकार से अपने में पूर्ण है। परन्तु काल व्यतिक्रम से इसका अध्ययन अध्यापन बहुत ही सीमित रह गया है। वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित विदेशी भाषा (अंग्रेजी) के व्यामोह में पड़कर हम भारतीय इस दिव्य भाषा से विमुख होते जा रहे हैं। इसलिये भारत में सर्वाधिक बोली जाने वाली तथा सम्प्रति राष्ट्रभाषा हिन्दी में गीता का अवतरण मूलरूप सदृश ही सुमधुर छन्दों में कर दिये जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस हेतु यह पद्यानुसरण विशुद्ध प्रचलित हिन्दी भाषा में गीता के संस्कृत श्लोकों के अनुरूप ही बिना किसी श्लोक में व्यवहृत भाव को तोड़े-मरोड़े या बढ़ाये-घटाये ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही प्रत्येक श्लोक का अर्थ भी उसमें निहित भाव के सहित भी स्पष्ट हो सके इसका भी यथा साध्य ध्यान रखा गया है जिससे गीता के उपदेशों का सही अभिप्राय समझा जा सके और श्रीमद्भगवद्गीता की ही भाँति इसका पाठ भी किया जा सके तथा पद्यान्तरण होने से शीघ्र ही याद भी हो सके इसका विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही पढ़ने और मनन करने हेतु सुगम और सुबोध करने का प्रयास भी किया गया है।

सामान्य हिन्दी का पाठक भी सुगमता से इसके द्वारा गीता के कल्याण-कर उपदेशों को हृदयंगम कर सकता है। गीता के उपदेशों का अनुसरण कितना महान शोकभयहारी, उभय लोकों हेतु कल्याण प्रद है वह इसके अध्ययन से ही सरलता से जाना जा सकता है। वास्तव में 'गीता' सर्वोच्च आनन्दमय मानव जीवन जीने की सर्वश्रेष्ठ विधा है। गीता में वर्णित भगवान के दिव्य उपदेशों में मानव मात्र को अभय, शोक-संताप रहित कर देने की अद्भुत शक्ति निहित है। स्वयं विशोक जीवन जीते हुये मनुष्य दूसरों को भी सुखी और संतापरहित कर सके इसकी विचित्र क्षमता है। लोक-संग्रह और लोक-कल्याण करने की कला की अपूर्व कड़ी है। अन्त: में सर्वमान्य सत्य यह है कि गीता नित्यमुक्त परमानन्द (निर्वाण सुख) प्राप्त कर लेने की प्रशस्त पथ प्रदर्शिका है। हो सकता है, कहीं छन्द या प्रस्तुति में त्रुटि रह गई हो तो कृपालु हृदय पाठक एवं उदार विज्ञजन क्षमा करें और इस गीता ज्ञान से लाभ उठायें।

इसको जनसामान्य के बीच प्रकाशित रूप देने में **झुनझुनवाला चैरिटी ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र** एवं उसके सर्वस्व श्रेष्ठी प्रवर **श्री दीनानाथ झुनझुनवाला** मेरी, कृतज्ञता तथा भगवान श्रीकृष्ण की असीम कृपा के अधिकारी हैं।

–चन्द्र देव पाण्डेय

प्रकाशकीय

अद्वितीय गीताभक्त एवं कर्मयोगी अग्रज स्व० प्रह्लादराय झुनझुनवाला की पुण्य स्मृति में झुनझुनवाला चैरिटी ट्रस्ट द्वारा स्थापित प्रह्लादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र की ओर से पं० चन्द्रदेव पाण्डेय कृत श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी पद्यानुसरण प्रकाशित करते हुए मुझे अत्यधिक हर्ष एवं संतोष का अनुभव हो रहा है। इसके माध्यम से हम अपने लक्ष्य की ओर एक कदम आगे बढ़ रहे हैं। स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना पूज्य भाई साहब की दृढ़ मान्यता के ही कारण हुई है कि व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में मानवता की प्रतिष्ठा गीता के संदेशों को अंगीकार करने पर ही संभव है। इसी दृष्टि से वे स्वयं आजीवन गीता के प्रचार-प्रसार में लगे रहे और कुछ ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे कि उनके न रहने पर भी इस दिशा में समुचित प्रयास होता रहे।

इसी कारण हमने उनकी पुण्यस्मृति में गीता स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना की जिसके तत्वावधान में गीता सम्बन्धी व्याख्यान तथा छात्र-छात्राओं में गीता के संस्कार पुष्ट करने के लिए अनेक प्रकार की प्रतियोगिताओं के आयोजन किये जाते हैं। गीता के संदेश विश्व के अनेक मनीषियों की वाणी से भी अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं और ऐसी अमर वाणियों का संग्रह भी "अमृत कलश" नाम से हमने इसीलिए प्रकाशित किया कि समाज में गीता-भावना का प्रसार किया जा सके। गीता की अनेकानेक टीकाओं का आधार लेते हुए एक सर्वसुलभ वैज्ञानिक और सुबोध विवेचना तैयार कराने के लिए भी हम प्रयत्नशील हैं।

इस बीच जब गीता, शास्त्र तथा पुराण साहित्य के अधिकारी विद्वान गुरुकल्प पं० चन्द्रदेव पाण्डेय ने सरल एवं बोधगम्य हिन्दी में यथासंभव गीता के ही शब्दों का अधिकतम उपयोग करते हुए स्वरचित हिन्दी पद्यानुसरण प्रस्तुत किया जिसमें अकारान्त छन्दों का ही पद्यांत में प्रयोग किया गया था, तो मुझे ऐसा लगा कि इसका प्रकाशन हमारे उद्देश्य के सर्वथा अनुरूप तथा जनसाधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। सामान्य शिक्षित लोग तथा विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी इसके माध्यम से गीता के तात्पर्य को सरलतापूर्वक ग्रहण करके मूलगीता को पढ़ने, समझने और अपनाने की दिशा में अग्रसर होंगे।

इसी भावना से हमने पाण्डुलिपि प्राप्त होते ही इसके तत्काल प्रकाशन का निश्चय किया और अब यह पुस्तक गीता प्रेमियों के सामने है। पाठक इसे प्रेम और श्रद्धा से अपनायेंगे तो हम अपना परिश्रम सफल एवं सार्थक मानेंगे।

जहाँ तक श्रीमद्भगवद्गीता के महत्व का प्रश्न है, प्राचीन एवं अर्वाचीन ऋषियों,

महात्माओं और विद्वानों ने बहुत कुछ कहा और लिखा है । मैं इसका अधिकारी नहीं हूँ किन्तु मेरी निश्चित धारणा है कि वर्तमान समय में मानवता के कल्याण के लिए श्रीमद्भगवद्गीता से बढ़कर कोई अवलम्बन नहीं है । सच तो यह है कि हमारे व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा वैदिक जीवन में आज जितनी भी समस्याएँ सिर उठा रही हैं, उनका मूल कारण यही है कि हमने विकास और आधुनिक सभ्यता की दौड़ में गीता के शाश्वत एवं सार्वभौम संदेशों को भुला दिया है । गीता के संदेश किसी जाति, धर्म या देश विशेष के लोगों के लिए नहीं अपितु मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी हैं और देर या सबेर इन्हें अपनाने पर ही मनुष्य समाज सुखी हो सकता है ।

यह केवल मेरी धारणा नहीं है अपितु जीवन में लगातार अनुभूत सत्य है । एक सामान्य सुविधा सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर यदि मैं अब तक के जीवन में परिवार समाज और देश के लिए कुछ भी सार्थक और महत्वपूर्ण काम कर सका हूँ तो उसका सम्पूर्ण श्रेय गीता से प्राप्त संस्कारों को है जो मुझे बचपन से ही प्रभु कृपा से पूज्य भाई साहब के माध्यम से प्राप्त होने लगे थे। कर्म में निष्ठा, प्रतिकूल एवं विषम परिस्थितियों में भी विचलित न होना, लक्ष्य के प्रति दृढता, साहस और धैर्य आदि के संस्कार गीता की कृपा से ही थोड़े-बहुत परिमाण में प्राप्त हुए हैं और इन्हीं के बल पर उद्योग व्यवसाय तथा समाजसेवा के क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय एवं संतोषजनक काम कर पाया हूँ ।

यह अनुभव भी केवल मेरा नहीं हैं । अनेकानेक महापुरुषों का भी अनुभव रहा है । राष्ट्रपिता महात्मागांधी तो गीता को माता कहते थे । उनका अनुभव सबके लिए स्मरणीय है—

"मुझे जन्म देने वाली मेरी पार्थिव माता तो मर गयी, पर इस शाश्वती (गीता) माता ने उनका स्थान हर तरह से पूरा किया है । यह तब से सदा मेरे साथ रहती है । इसमें कभी कोई बदल नहीं हुआ, कभी इसने मुझे असहाय नहीं छोड़ा । जब कोई कठिनाई या दुःख मेरे सामने आता है, तब मैं इसकी गोद में जा बैठता हूँ ।"

महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी गीता में प्रतिपादित सात्विक कर्ता के आदर्श को प्रति क्षण सामने रखने पर बल देते थे । उनका आदेश है-

"गीता के सात्विक कर्त्ता के आदर्श को अपने सामने रखो । तब जीवन कंटक की क्यारी न होकर शिरीष की गद्दी बन जायगा ।

सात्विक कर्त्ता की यह भावना समाज के लिए गीता की महती देन है—

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साह समन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्यो निर्विकारः कर्ता सात्विकमुच्यते ।। *(गीता १८/२६)*

गीता के इस श्लोक में चार तथ्यों पर आग्रह किया गया है कि जिसका अनुगमन करना सात्विक कर्ता का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। ये चार तथ्य हैं- आसक्ति न रहना मैं और मेरा न कहना, धैर्य और उत्साह के साथ कार्य का सम्पादन करना तथा सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार रहना। यही सात्विक कर्ता का लक्षण है।''

गीता पर बोलते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा- ''कर्तव्य की प्रेरणा से कर्म करना और सर्वथा निर्लिप्त रहकर कर्म करना और कर्म करके प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना, यही महान् योग है। संन्यास के सम्बन्ध में कहा कि यह जीवन से पलायन करने का नाम नहीं है। संन्यास का अर्थ, घर-बार और परिवार, लोक व्यवहार तथा संसार को छोड़कर दिगम्बर बन जाना नहीं हैं। वन के नितान्त एकान्त में शरण लेकर इष्ट की आराधना नहीं, वरन् सन्यास का सही अर्थ है, निष्काम भाव से कर्म करते रहना और सब कर्मों को तथा उसके परिणामों को प्रभु को समर्पित कर देना। तत्वतः कर्मयोग एवं कर्म सन्यास का अर्थ एक ही है जैसे आधा गिलास खाली एवं आधा गिलास भरा।''

महान सन्त विनोबा भावे कहते हैं कि गीता उपनिषदों की भी उपनिषद है क्योंकि समस्त उपनिषदों को दुह कर यह गीता रूपी अमृतमय दूध भगवान ने अर्जुन के निमित्त से संसार को दिया है। यह धर्म ज्ञान का एक कोष है। इसमें प्रत्येक समस्या का समाधान है।

प्रस्तुत पद्यानुसरण गीताज्ञान के प्रसार में सहायक होने के कारण गीता प्रेमियों द्वारा समादृत होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। मैं इसके प्रस्तुतकर्ता पं० चन्द्रदेव पाण्डेय के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे जनसेवा का यह अवसर सुलभ कराया। मैं इसके सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए आचार्य मृत्युंजय त्रिपाठी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों में महत्वपूर्ण सुझाव एवं सहयोग के लिए अग्रज श्री राम अवतार झुनझुनवाला, डॉ० कपिलदेव पाण्डेय, सत्यनारायण झुनझुनवाला, राजाराम शुक्ल, रविशंकर झुनझुनवाला आदि के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन अपना कर्तव्य समझता हूँ।

इसके प्रकाशन में डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र का सहयोग मैं कभी भूल नहीं सकता; क्योंकि मेरे प्रत्येक प्रकाशन में इनका योगदान मेरे लिये बहुमूल्य रहा है।

वाराणसी
गीता जयन्ती २०५७ वि०

दीनानाथ झुनझुनवाला

कर्मयोगी स्व० श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला

(संक्षिप्त परिचय)

श्री प्रहलादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र के प्रेरणास्त्रोत, मेरे पूज्य अग्रज स्व० प्रह्लादराय जी सच्चे अर्थों में एक कर्मयोगी थे। श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य पाठ तो बहुतेरे व्यक्ति करते हैं, बहुतों ने सम्पूर्ण गीता कण्ठस्थ कर रखी है किन्तु पूज्य भाई साहब ऐसे दुर्लभ व्यक्ति थे, जिन्होंने इस महान ग्रंथ को कण्ठस्थ ही नहीं, अपितु हृदयंगम कर लिया था। उनके लिये श्रीमद्भगवद्गीता एक आचरण संहिता थी, जिसे चरितार्थ कर लेने के बाद तमाम शास्त्रों के जंगल में भटकने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वास्तव में उनका सम्पूर्ण जीवन गीता के कर्मयोग की एक खुली किताब है, जिसे पढ़ने वाला तमाम प्रकार के द्वन्द्वों और विषमताओं के बीच सर्वथा अविचलित भाव से निरंतर कर्मपथ पर अग्रसर रहने की प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

भागलपुर (बिहार) के वामदेव नामक गांव में जन्मे भाई साहब, हम सात भाइयों और दो बहनों में सबसे बड़े थे। हम सबकी समुचित शिक्षा-दीक्षा, सबकी सब प्रकार की आवश्यकताओं का ध्यान, सबके उपयुक्त कार्य व्यवसाय का दिशा-निर्देश तथा सबके योगक्षेम की वे पूरी चिन्ता रखते तथा तमाम प्रकार के सांसारिक कर्तव्यों में अपने समय के एक-एक मिनट का सुदपयोग करते हुए भी वे सदैव निर्लिप्त एवं तटस्थ रहते थे। किसी से वे कोई अपेक्षा नहीं रखते थे। उनकी कोई अपेक्षा थी तो बस इतनी कि परिवार के सभी प्राणी सुसंस्कारित, कुल-परम्पराओं के प्रति निष्ठावान तथा स्वधर्मपालन में तत्पर रहें। उनकी यह अपेक्षा केवल अपने परिवार के हम लोगों से ही नहीं, अपितु उन सभी बच्चों, युवकों और बूढ़ों से थी जो किसी भी प्रकार उनके प्रभाव क्षेत्र में आते थे। उनकी इस धर्मनिष्ठा का ही परिणाम था कि उनके द्वारा लगाये गये सभी पौधे पुष्पित-पल्लवित एवं फलीभूत होते रहे, किन्तु उन्होंने कभी स्वयं के लिए फल-कामना नहीं की।

बहुत छोटी अवस्था से ही वे गीता के भक्त थे। १४-१५ वर्ष की अवस्था तक उन्हें सम्पूर्ण गीता कंठस्थ हो गई थी। वे सीधे ही नहीं, उल्टे क्रम में भी गीता के श्लोक पुस्तक देखे बिना सुना सकते थे। कम उम्र में गीता कंठाग्र होने के कारण उन्हें बचपन में स्वर्णपदक प्राप्त हुआ था। कलकत्ते में पूज्य नाना जी श्री भोलाराम टीबड़ेवाला के यहाँ रहते हुए गीताप्रेस के संस्थापक पूज्य श्री जयदयाल गोयनका तथा बाद में पूज्य भाईजी श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार और उनके माध्यम से अनेकानेक संत-महात्माओं का सान्निध्य प्राप्त हुआ तो आध्यात्मिक जीवन में उनकी पैठ और गहरी हो

गई । जीवन के उत्तरार्द्ध में धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज से दीक्षा ग्रहण करने के बाद तो वे एक सच्चे गृहस्थ संत की भाँति पूर्णतः आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने लगे ।

इस सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवनयात्रा के दौरान वे अपने सांसारिक कर्तव्यों एवं दायित्वों से क्षण भर के लिए भी कभी उदासीन या विमुख नहीं दिखलाई पड़े । आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुखता उन्हें लौकिक कर्तव्यों के प्रति और भी अधिक जागरूक बनाती थी । एक प्रकार से देखा जाय तो अध्यात्म ने उनकी लोकचेतना को विस्तृत कर दिया । भागलपुर, ऋषिकेश तथा वाराणसी आदि विभिन्न स्थानों में संत समागम तथा विभिन्न धार्मिक आयोजनों में महत्वपूर्ण पहल के साथ ही उन्होंने भागलपुर में जनहिताय एक प्रशस्त सत्संग भवन, गंगा तट पर पिता जी की स्मृति में हनुमान् घाट तथा घाट पर शिव मन्दिर का निर्माण कराया । गीता तथा रामायण के संस्कार बच्चों में विकसित हों, इस उद्देश्य से उन्होंने 'हनुमान् आदर्श विद्यालय' की स्थापना की। इसी प्रकार वाराणसी में गोदौलिया के समीप एक भवन उन्होंने इसी उद्देश्य से क्रय किया जिसका ट्रस्ट बनाकर उन्होंने यह सुनिश्चित कर दिया कि उससे प्राप्त आय का सदुपयोग धार्मिक तथा जनसेवा से सम्बन्धित कार्यों के लिए ही किया जाएगा ।

भाई श्री प्रह्लादरायजी निःसन्तान थे । वे उम्र में मुझसे बीस वर्ष बड़े थे और मुझे पुत्रवत् स्नेह देते थे । १६ वर्ष की अवस्था में वैदिक रीति से उन्होंने मुझे गोद भी ले लिया । अतः मैं अपना यह पुनीत कर्तव्य मानता हूँ कि जिन लक्ष्यों के लिए उनका जीवन समर्पित था, उनके प्रचार-प्रसार एवं कार्यान्वयन की दिशा में यथाशक्ति प्रयास करूँ । इस कर्तव्य-भावना से ही श्री प्रह्लादराय झुनझुनवाला स्मृति गीता स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना की गई, जिसके तत्वावधान में संगोष्ठियों, विद्वानों के प्रवचन, तथा छात्र-छात्राओं में गीता के प्रति रुचि विकसित करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार की प्रतियोगिताओं के आयोजन किये जाते हैं । इसी शृंखला में यह पुस्तक भी प्रकाशित की जा रही है जो उनके चरणों में सादर समर्पित है । संतो महात्माओं तथा विद्वानों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी और उनका उपदेशामृत ग्रहण करते वे तृप्त नहीं होते थे। अनेकानेक महापुरुषों की सूक्तियाँ उन्हें कंठस्थ थीं और इन्हीं सूक्तियों के माध्यम से उनका अपना जीवन-दर्शन भी अभिव्यक्त होता था। उनके द्वारा विकसित संस्कारों के फलस्वरूप मैं भी संतों के चरणों में बैठने तथा उनकी अमृतमयी वाणी का रस ग्रहण करने का अवसर निकालता रहता हूँ । इस प्रकार की प्रकाशित सामग्री का यथासमय रसास्वादन करते रहने की आदत भी प्रभु कृपा से मुझमें विकसित हुई । पढ़ते-सुनते जो बात अच्छी लगती है, उसे डायरी पर अंकित कर लेता हूँ ।

बात जब भाई श्री प्रह्लादराय जी के जीवन-दर्शन तथा उनके विचारों की आती है

तो उनके सान्निध्य में देखी-सुनी गई कई बातें सामने आ जाती हैं जिनका उल्लेख करना इस दृष्टि से आवश्यक है कि इनसे मैंने बहुत कुछ पाया है तथा इन पंक्तियों को पढ़ने वाले मेरे जैसे बहुत से दूसरे लोग भी इनसे सहज ही लाभान्वित हो सकते हैं। शैशव काल से लेकर युवावस्था तक उनके जीवन से जो कुछ भी मैं सीख पाया, वह मेरे जीवन का प्रमुख सम्बल रहा है। उनसे प्राप्त कुछ जीवन सूत्रों की चर्चा इसी दृष्टि से मैं आवश्यक मानता हूँ।

भाई साहब के जीवन-दर्शन का पहला सूत्र है- कर्मनिष्ठा। "कर्म ही पूजा है" इस भाव से जो भी कार्य हाथ में लिया जाय, उसका पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी के साथ संपादन किया जाय। उनकी दृष्टि में कोई काम छोटा या बड़ा नहीं होता था। कर्ता की संकल्पशक्ति, दृढ़ता, निष्ठा तथा भावना कार्य को गुरुता प्रदान करती है। पूजा जैसे पवित्र भाव के साथ पूरे मनोयोग से हम कार्य में प्रवृत्त हों तो सफलता के लिए हमें प्रतीक्षा नहीं करनी होगी। उनका दृढ़ मत था कि संकल्प शक्ति ही सफलता का मूलमंत्र हैं।

इसके लिए ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास को भी वे आवश्यक मानते थे। अपने पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा रखते हुए भी ईश्वर निष्ठा आवश्यक है। उनके अनुसार ईश्वर-चिन्तन मनुष्य को अकर्मण्य अथवा आलसी नहीं होने देता। यह मनुष्य को अपने भीतर निहित अधिकतम ऊर्जा के साक्षात्कार का अवसर तथा प्रतिकूलताओं के बीच संघर्षरत रहने की नित्य नवीन जीवन शक्ति प्रदान करता है। जिससे वह अपने समाज का हित कर सकता है।

इसी विचार से पूज्य श्री प्रह्लादराय जी परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को जहाँ पुरुषार्थ और उद्यम के लिए प्रेरित करते थे, वहीं उनमें कीर्तन, सूर्योदय के पूर्व उठना, नियमित स्नान-ध्यान, पूजन-वंदन तथा आहार-विहार की सात्विकता पर वे पूरा बल देते थे। वे सिनेमा तथा सस्ते मनोरंजन के दूसरे साधनों से बचने की आवश्यकता प्रतिपादित करते थे क्योंकि इनसे शक्ति का अपव्यय होता है। उन्होंने स्वयं जीवन पर्यन्त कभी सिनेमा नहीं देखा। चाय-पान या अन्य किसी प्रकार का व्यसन भी उन्हें कभी नहीं हुआ। उनका दृढ़ मत था कि व्यसन चाहे कैसा भी हो, मनुष्य की कार्यक्षमता को घटाता ही है। उनके सात्विक एवं नियमशील जीवन तथा आचार-विचार का प्रभाव न केवल परिवार के हम लोगों पर अपितु किसी भी प्रकार उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों पर पड़े बिना नहीं रहता था।

आचरण एवं व्यवहार की सात्विकता के साथ ही वे कुल-परम्पराओं मर्यादाओं तथा शास्त्रविहित संस्कारों के पालन पर भी बल देते थे। वे मानते थे कि इनके आचरण द्वारा मनुष्य अपने मूल से जुड़ता है तथा इनका प्रभाव उसके आचरण एवं विचारों पर

पड़ता है। इसी विचार से वे इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि परिवार के सभी बच्चों के शास्त्रोक्त संस्कार ठीक समय पर विधि-विधान के साथ सम्पन्न कराये जायं, इसका एक प्रमाण तो यही है कि उन्होंने आग्रहपूर्वक हम सभी भाइयों का यज्ञोपवीत संस्कार यथासमय सम्पन्न कराया था।

वे नियम के बड़े पक्के थे और ऐसे ही लोगों को पसन्द करते थे। गंगा स्नान, दोनों समय संध्या-वन्दना, गीता पाठ, गायत्री जप तथा गो सेवा आदि उनकी अपनी दिनचर्या के अनिवार्य अंग थे। विषम से विषम परिस्थितियों में भी वे इन नियमों को छोड़ना नहीं चाहते थे। इसीलिए काशी, प्रयाग, ऋषिकेश आदि ऐसी जगहों पर ही वे जाते थे, जहाँ गंगा सुलभ हो। गंगा स्नान संभव न हो तो उनका मन उचटा सा रहता था। इस प्रकार संध्यावंदन और गीता-पाठ में प्रमाद उन्हें सह्य नहीं था। एक ही अध्याय सही, किन्तु नियमित पाठ होना चाहिये। घर-बाहर के बच्चों को भी वे अपने साथ बैठाकर गीता-पाठ में सम्मिलित क़र लेते थे। उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति अपने इन नियमों में अडिग रहता है वही कार्य-व्यवसाय के अन्य क्षेत्रों में भी अडिग रह सकता है।

उनकी मान्यता थी कि जो व्यक्ति धर्म-कर्म, पूजा-पाठ तथा कुल परंपराओं का पालन करते हुए अपने कार्य व्यवसाय में निष्ठापूर्वक दत्तचित्त रहेगा उसे सफलता अपने आप मिलेगी। किन्तु सफलता के लिए बहुत आकुल और अधीर होना हमारे हित में नहीं है। काम करना हमारा धर्म है, फल तो ऊपर वाले के अधीन है। वह बहुत दयावान, बड़ा कृपालु है। वह सब कुछ देखता और जानता है। हमारी कर्मनिष्ठा एवं भावना के अनुसार हमें भी देगा ही, किन्तु हम उसे अपना अधिकार मानकर आकुल-व्याकुल क्यों हों ? सफलता नहीं मिली तो उसके लिए निराश भी क्यों हों ? निराश होने से काम नहीं चलेगा। सफलता से वंचित हुए तो इसका अर्थ यह है कि कहीं न कहीं हमारी कार्यपद्धति में कुछ त्रुटि है। निराश होने के बजाय हम आस्थापूर्वक अपनी कार्यपद्धति को संशोधित एवं परिष्कृत करते हुए पुनः अपेक्षाकृत अधिक उत्साह से कार्यारम्भ करें, यही सफलता का रहस्य हैं।

इसी प्रकार उनके महान् व्यक्तित्व की बहुत सी विशेषताएं हैं, जो इस अवसर पर स्मरण आती हैं। परन्तु उन सबका अंकन संभव नहीं है। हो सकता, तो संभवतः एक पूरी पुस्तक ही तैयार हो जाती। अस्तु, उपर्युक्त शब्दों के माध्यम से उनका सादर स्मरण और वंदन करते हुए अपने श्रद्धासुमन उनके चरणों में अर्पित करना ही यथेष्ट मानता हूँ।

—दीनानाथ झुनझुनवाला

श्री भगवान कृष्ण का अर्जुन को निमित्त बनाकर मनुष्यमात्र को अमृत आदेश

श्रीमद्भगवद्गीता से उद्धृत

१- हे अर्जुन! इस विषम काल में नपुंसकता (कर्तव्य कर्म से भागना) को मत प्राप्त होवो। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। यह मानवीय हृदय की क्षुद्र दुर्बलता मात्र है। अतएव इसे त्याग कर युद्ध (सामयिक कर्तव्य) के लिये उठ खड़े हो जाओ।२/३।।

२- यदि युद्ध (अपने कर्तव्य कर्म) करते हुये मरोगे तो उत्तम लोक प्राप्त होगा और जीतोगे (सफल होओगे) तो पृथ्वी का सुख मिलेगा। हानि-लाभ, जय-पराजय और युद्ध (कर्म) में होने वाले सुख दुःख में समान भाव रखकर युद्ध (कर्तव्य कर्म) को अपना निश्चित कार्य मानकर करोगे तो किसी प्रकार से भी पाप (बन्धन) नहीं लगेगा। २/३७-३८

३- तुम्हारा (प्राणिमात्र का) अधिकार केवल कर्म में ही हैं फल पाने में कभी नहीं इसलिये कर्म को फल का हेतु समझ कर मत करो और न तो कर्तव्य कर्म का त्याग ही करो। आसक्ति रहित होकर योग (कल्याण साधना) में लग जाओ तथा सफलता-असफलता में समान चित्त होकर अपने कर्तव्य कर्म का पालन करो। इस प्रकार की समता ही योग है। २/४७-४८

४- अन्य भाँति से किये जाने वाले कर्म इस बुद्धिमय योग से सर्वथाहीन हैं इसलिए इस बुद्धि योग की ही शरण लो। फलाशा के अधीन जन सर्वदा दरिद्र (अतृप्त) ही रहते हैं। इस बुद्धि से युक्त हुआ मनुष्य कर्म करने से होने वाले पाप-पुण्य (शुभाशुभ) दोनों से छूट जाता है। अतएव तुम इसी योग के आश्रित हो जाओ। यह बुद्धिमय योग कर्म करते हुए भी कर्म-फल रूप बन्धन से बचने का कौशल है। २/४९-५०

५- जब तेरी भ्रमित हुई बुद्धि मोह के दलदल से पार हो जायेगी तब तू सुने हुए और सुने जाने योग्य सभी आपात-रमणीय विषयों की कामना से सर्वथा उपराम हो जायेगा। इस प्रकार जब सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि स्थिर हो जायेगी तब तुझे यह कल्याणकर निष्कामयोग प्राप्त होगा। (एतदर्थ सन्नद्ध होकर यत्न कर)। २/५२-५३

६- यज्ञ (सभी लोक कल्याण कर्म) के अतिरिक्त कर्म बन्धनकारक होते हैं। इसलिये तू अनासक्त हो परमात्मा के निमित्त ही कर्म कर। ३/९

७- जनकादि राजर्षिगण भी इसी कर्मयोग का आश्रय लेकर परमसिद्धि को प्राप्त हो गये हैं। लोकसंग्रह को देखते हुए भी तुझे वैसा ही करना चाहिए। इस हेतु तू अनासक्त हुआ अपने कर्तव्य कर्मों को करता रह। अनासक्त हो कर्तव्य कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। ३/१९-२०

८- इस हेतु तू पहले इन्द्रियों (मन-बुद्धि सहित) को अपने वश में करके इनमें ही छिपे हुए ज्ञान-विज्ञान को नाश करने वाले इस कामरूप वैरी को नष्ट कर दे। शरीर से उसकी संचालिका इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं इसी भाँति इन्द्रियों से मन बलवत्तर है मन से भी बुद्धि परे है और सबसे परे इन सबका स्वामी वह जीवात्मा है। इस प्रकार अपने को सबसे परे मानकर स्वयं से इन सबको नियन्त्रित करके नाना रूप धारण करने वाली तथा बुद्धि आदि को भ्रमित करके पाप कराने वाली इस वैरिणी कामना को समूल नष्ट कर दे। ३/४१,४२,४३।

९- सभी प्रकार के वस्तुसाध्य यज्ञों से ज्ञानयज्ञ अतिशय श्रेयष्कर है; क्योंकि ज्ञान में सभी किये गये कर्म विलीन हो जाते हैं (फल रूप में बन्धन नहीं कर सकते)। इस सत्य ज्ञान को शास्त्रज्ञ तथा तत्ववेत्ता (अनुभवसिद्ध) महापुरुष से उनकी सेवा करता हुआ उनके शारणापन्न हो विनीत प्रश्न करके जान ले। इसे प्राप्त कर लेने के बाद पुनः तुझे कभी भी मोह नहीं प्राप्त होगा और इस ज्ञान से सभी प्राणियों को (आत्मतत्व में एक ही समझ कर) उन्हें अपने में देखेगा और उसी भाँति अपने सहित सभी को मुझमें भी देखेगा। यदि तू सभी प्राणियों में भी सबसे बड़ा पापी है तो भी ज्ञान रूप नौका से भवसिन्धु (जन्म मरणादि) से पार हो जायेगा। अतः इस परम ज्ञान को अवश्य प्राप्त कर ले। ४/३३,३४,३५,३६

१०. अज्ञान से हृदय में उपजने वाले संशय को ज्ञान से निरस्त कर योग में स्थित हुआ युद्ध (कर्म) करने हेतु उठ खड़ा (तत्पर) हो जा। ४/४२

११- योगी तपस्वी से श्रेष्ठ है। मात्र शास्त्रज्ञान रखने वालों से भी श्रेष्ठ है। सकाम कर्मियों से तो अतिश्रेष्ठ है इसलिए तू कर्मयोगी बन। इन सब

योगियों में भी जो मुझमें मन चित्त लगा कर श्रद्धापूर्वक मुझे ही भजता है वह तो सबसे ही श्रेष्ठ है अतएव तू भी वैसा ही कर। ६/४६-४७

१२. इस हेतु हे अर्जुन, सभी समय मुझे स्मरण कर और युद्ध (कर्त्तव्य कर्म) भी कर। मुझमें मन बुद्धि अर्पित करके निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा। ८/९

१३- तू जो सत्कर्म करे, जो भोग करे, जो यज्ञादि शुभ कर्म करे अथवा जो भी दान करे या तप करे वह सब मुझ परमात्मा को अर्पण कर दे (मेरे ही निमित्त करे)। इस प्रकार उन कर्मों के शुभाशुभ बन्धनों से छूट जाएगा। इस अर्पण (त्याग) रूप योग से तू जन्म मरणादि रूप भव क्लेशों से मुक्त हुआ मुझे प्राप्त हो जायेगा। ९/२७-२८

१४. मेरे आश्रित हुये स्त्री, वैश्य तथा शूद्र आदि पाप योनि वाले भी परमगति को प्राप्त हो जाते हैं तब उत्तम वर्णों वालों का क्या कहना, इस संसार का सारा सुख नाशवान है। इसे (संसारिक भोग को) प्राप्त करके मुझको ही भज। ९/३२-३३

१५- तू मेरे में ही मन लगा, मेरा ही भक्त हो जा, मेरे लिये ही यज्ञ (कर्तव्य कर्म) कर, मुझे ही नमस्कार कर। इस भाँति युक्तचित्त हुआ सब भाँति मेरे ही परायण होकर तु मुझे ही प्राप्त हो जायेगा। ९/३४

१६- सतत मेरे में ही मन लगाकर मेरा ही चिन्तन करता रह। इसके बाद तू निःसन्देह मुझे ही प्राप्त हो जायेगा। यदि तू मुझ में चित्त स्थिर न कर सके तो अभ्यास से चित्त स्थिर करके मुझे प्राप्त करने की चेष्टा कर। यदि अभ्यास में भी असमर्थ है तो मेरे निमित्त ही सब कर्तव्य कर्म कर। यदि इसमें भी असमर्थ है तो मन इन्द्रियों को संयत कर सम्पूर्ण कर्मों के फलों का ही त्याग कर दे। १२/८,९,१०,११

१७. अभ्यास योग से ज्ञान (सत्य का बोध) श्रेष्ठ है, परमात्मा का ध्यान ज्ञान से भी उत्तम है परन्तु कर्म-फल का त्याग तो ध्यान से भी श्रेष्ठ है अर्थात् श्रेष्ठतम है। क्योंकि कर्मफल की इच्छा और उसमें आसक्ति के त्याग से शीघ्र ही शांति प्राप्त हो जाती है। (इस हेतु सुगमता और सार्थकता दोनों ही दृष्टि से सर्वश्रेयस्कर कर्म-फल त्याग रूप कर्म करके परम शांति प्राप्त कर ले) १२/ १२।

१८- जो शास्त्र विधान से रहित अपनी इच्छानुसार ही शुभ कर्मों को करता है

उसे न तो इस लोक में सुख मिलता है और न तो परम गति ही प्राप्त होती है। इसलिये क्या करने योग्य है क्या नहीं करने योग्य है इसको सबके प्रमाणभूत शास्त्रों से जानकर उनमें बतलाई गई विधि से ही कर्म कर (यही श्रेयस्कर है)। १६/२३-२४

१९- मन से मुझमें सभी कर्मों का अर्पण (त्याग) करते हुये मेरे परायण हुआ इस बुद्धि योग का आश्रय ले सर्वदा मुझमें ही चित्त लगा। मेरे में चित्त लगाकर मुझे परायण हुआ तू मेरी कृपा से सभी बाधाओं को पार कर लेगा (और अन्त में मुझे ही प्राप्त हो जायेगा)। १८/५७,५८

२०- परमेश्वर सभी जीवों के हृदय में निवास करता है और सभी प्राणियों को उनके शरीर रूपी यंत्र में स्थित करके उनके ही गुण कर्मानुसार घुमाया करता है। तू सभी भाँति उसी की शरण में हो जा (अपना सम्पूर्ण भार उस पर ही छोड़ दे)। उसकी कृपा से परम शान्तिमय शाश्वत पद प्राप्त कर लेगा। १८/६१-६२

२१- मेरे में मन लगा मेरा ही भक्त होकर मेरे ही निमित्त यज्ञ (उत्तम कर्तव्य कर्म) करता रह और सर्वथा विनीत भी बना रह तू मेरा प्रिय है इसलिये प्रतिज्ञा करके सत्य कहता हूँ कि इस भाँति से तू मुझे ही प्राप्त हो जायेगा। १८/६५

२२- सभी धर्ममय कर्तव्य कर्मों को मुझ में (मेरे निमित्त) अर्पण कर तू एक मेरी ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों (बन्धनों) से मुक्त कर दूँगा। तू शोक न कर। १८/६६

-चन्द्र देव पाण्डेय

श्रीमद्भगवद्गीता

(हिन्दी पद्यानुसरण सहित)

माहात्म्य

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादि वर्जितः ।।१।।
भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।२।।
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतंमहत् ।।३।।
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ।।४।।
एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतमेको देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ।।५।।

प्रार्थना

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वोत्पत्यादि हेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय, गोविन्दाय नमो नमः ।।१।।
प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृत दुहे नमः ।।
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।२।।

ध्यान

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं बनमालिनमीश्वरम् ।।
वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ।।

माहात्म्य

इस पुण्य शास्त्र गीता का जो, करे ध्यान से नित्य परायण।
हो परम विष्णु पद प्राप्त उसे, करते भयशोकादि पलायन।।१।।
अमृततत्त्व महाभारत का, श्रीकृष्ण कमलमुख से निःसृत।
गीतागंगाजल पीकर नर, पुनर्जन्म से होता विरहित।।२।।
गायरूप सब उपनिषदों के, दोग्धा बने नन्द-नन्दन।
बछड़ा पार्थ दूध गीतामृत, महान् भोक्ता ज्ञानीजन।।३।।
गीतागायन करे रात दिन, अन्य शास्त्र से कहा प्रयोजन।
स्वयं कही निजमुख से हरि ने, जो भुक्ति-मुक्ति प्रद शोक शमन।।४।।
एक शास्त्र हरिगीत मात्र, देव एक देवकीसुवन।
मन्त्र एक हरि नाम परम, कर्म एक उनका सेवन।।५।।

प्रार्थना

स्थिति अन्त सृष्टि कारण जो विश्वरूप को नमस्कार।
स्वयं विश्व, विश्वेश्वर को, कृष्णचन्द्र को नमस्कार।।१।।
शरणागतहित कल्पवृक्ष, साटी कर एक सुशोभित।
दोहनकर्ता गीतामृत, को हो नमन, ज्ञानमुद्रान्वित।।
देव देव वसुदेव-सुवन, चाणूर कंस अरिमर्दन।
परमानन्द देवकी के, सकृत जगद्गुरु कृष्ण, नमन।।२।।

ध्यान

कमल नयन नव जलद श्याम, विद्युच्छटा युक्त अम्बर।
द्विभुज महेश्वर वनमाली, कर एक ज्ञानमुद्राधर।।
कर में मुरली नव नीरद श्याम स्वरूप छटा छहरावत हैं,
पटपीत लसे सिर मोर-पखा बनमाल हिये लहरावत हैं।
मुख चन्द्र सुधा वरसे छवि से मनमोहन चित्त चुरावत हैं,
जग ज्ञात न तत्त्व परे जिससे, हरि ध्यान धरे उर आवत हैं।।

ॐ

श्रीगणेशाय नमः

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

अर्जुनविषादयोगः

।। धृतराष्ट्र उवाच ।।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ।।१।।

।। सञ्जय उवाच ।।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ।।२।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।।३।।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ।।४।।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ।।५।।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ।।६।।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ।।७।।

● सहस्रों अनर्थक वाक्यों से एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

पहला अध्याय

अर्जुनविषादयोग

।। धृतराष्ट्र बोले ।।

धर्मक्षेत्र उस कुरुक्षेत्र में युद्ध कामना से कर निश्चय।
मेरे और पाण्डुपुत्रों ने हो एकत्र किया क्या सञ्जय? ।।१।।

।। सञ्जय बोले ।।

सज्जित[1] व्यूहाकार पाण्डवी अनी[2] देख राजा दुर्योधन।
जा समीप आचार्य द्रोण के बोला उनसे इस भाँति वचन।।२।।

बुद्धिमान निज शिष्य द्रुपदसुत के द्वारा व्यूहित[3] होकर।
खड़ी विशाल पाण्डवी सेना देखें हे आचार्य प्रवर।।३।।

इसमें महाधनुर्धर रण में भीमार्जुन से महावीर।
महारथी सात्यकि विराट से पाञ्चालनृपति सब महाधीर।।४।।

अति बलशाली काशिराज से धृष्टकेतु श्रीचेकितान।
पुरुजित कुन्तिभोज नरपुङ्गव शैव्य यहाँ हैं विद्यमान।।५।।

पराक्रमी अति युधामन्यु हैं उत्तमौजा राजा बलवान।
अभिमन्यु द्रौपदी पुत्र सभी ये महारथी हैं वर्तमान।।६।।

विप्रश्रेष्ठ अपने दल के जो शूरप्रवर[4] उनको लें जान।
सैन्य नायकों को बतलाता आप करें उनका भी ज्ञान।।७।।

---

१. गठित २. सेना ३. व्यवस्थित ४. वीरों में श्रेष्ठ

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ।।८।।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ।।९।।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ।।१०।।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।।११।।

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।।१२।।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।।१३।।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।।१४।।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ।।१५।।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ।।१६।।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ।।१७।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ।।१८।।

● दूसरों की त्रुटियों या कृत्य और अकृत्य की खोज में न रहो। तुम तो अपनी ही त्रुटियों और कृत्य-अकृत्यों पर विचार करो।

स्वयं आप हैं भीष्म कर्ण हैं संग्रामजयी हैं कृपाचार्य

अश्वत्थामा भूरिश्रवा हैं विकर्ण आदि सब युद्धाचार्य ।।८।।

अन्य बहुत से महारथी सब कर जीवन का मोह निवारण।
शस्त्रसुसज्जित रणप्रवीण[1] स्थित, एकत्रित मेरे हित कारण ।।९।।

निज वाहिनी भीष्म से रक्षित है अजेय[2] अतिसंख्य आर्य।
वहीं भीम-रक्षित सीमित दल जय करना जो सुगम कार्य ।।१०।।

निज सेना के साथ आप सब अपने मोर्चो पर स्थित होकर।
सभी ओर से करें सुरक्षा भीष्मपितामह की निश्चय कर ।।११।।

हर्षित करते हुये उसे तब वे कौरवकुलश्रेष्ठ पितामह।
सिंह गर्जना करके अपना शंख बजाये परम भयावह ।।१२।।

सहसा भेरी शंख पणव गोमुख सिंहे बज उठे विशाल।
कौरव सेना में एकसाथ जिससे ध्वनि हो उठी कराल ।।१३।।

श्वेत हयों से जुते हुये तब निज विशाल रथ पर आसीन।
कृष्ण और अर्जुन ने अपने शंखो से विशाल ध्वनि कीन ।।१४।।

हृषीकेश ने पाञ्चजन्य को देवदत्त निज वीरधनञ्जय।
बजा दिये निज शंख पौण्ड्र को उग्रकर्मरत[3] भीम अजय ।।१५।।

राजा कुन्तीसुवन युधिष्ठिर अपना शंख अनन्तविजय।
नकुल तथा सहदेव बजाये, मणिपुष्पक सुघोष शंखद्वय[4] ।।१६।।

महाधनुर्धर काशिराज वे शूर शिखण्डी महाप्रबल।
धृष्टद्युम्न राजा विराट सात्यकि अजेय सबही अतिबल ।।१७।।

द्रुपद सभी द्रौपदीतनय, सौभद्र[5] संग अतिशय बलवान।
राजन्, सभी ओर से सबने शंखध्वनि की पृथक महान ।।१८।।

---

१. युद्ध करने में चतुर २. न जीतने योग्य, ३. भीषण कार्य करने वाले, ४. दो शंख,
५. अभिमन्यु

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।।१९।।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।।२०।।

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

।। अर्जुन उवाच ।।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।।२१।।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ।।२२।।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।।२३।।

।। सञ्जय उवाच ।।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।।२४।।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरूनिति ।।२५।।

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान्पौत्रान् सखींस्तथा ।।२६।।

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ।।२७।।

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

।। अर्जुन उवाच ।।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।।२८।।

● उस काम का करना अच्छा नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े और जिसका फल मनुष्य अप्रसन्न-चित्त से ग्रहण करे।

वह भीषण शंखध्वनि कौरव दल का करती हृदय विदीर्ण[१] ।
नभमण्डल पृथ्वीतल ऊपर व्याप उठी अति घोर प्रकीर्ण[२] ।।१९।।

मोर्चाबद्ध खड़े कुरुदल को वानरध्वज वह पार्थ देखकर ।
उद्यत थे शस्त्र प्रहार हेतु, सबही, तब निज धनुष उठाकर ।।२०।।

वहाँ श्रीकृष्ण से अर्जुन ने इस भाँति कहा तब हे राजन् ।

।। अर्जुन बोला ।।

दोनों दल के बीच खड़ा करदें रथ मेरा आप जनार्दन ।।२१।।

जब तक इनको देख न लूँ जो युद्ध हेतु हैं यहाँ उपस्थित ।
किन-किन वीरों के साथ युद्ध करना अब होगा मुझे उचित ।।२२।।

दुष्टबुद्धि दुर्योधन का हित करने की रण में इच्छा कर ।
आये यहाँ युद्ध करने जो देखूँगा मैं उन्हें निकटतर[३] ।।२३।।

।। सञ्जय बोले ।।

अर्जुन द्वारा कही गई इन बातों को सुनकर राजन् ।
दोनो सेना मध्य श्रेष्ठरथ स्थित करके तब मधुसूदन ।।२४।।

भीष्मद्रोण थे जहाँ उपस्थित सभी नृपतिगण के सम्मुख ।
बोले अर्जुन देखो इनको जुटे हुए कुरुवीर प्रमुख ।।२५।।

अर्जुन ने देखा वहाँ पितृगण[४] तथा पितामह भी हैं स्थित ।
मामा भ्राता आचार्य पौत्र पुत्र मित्र भी एकत्रित ।।२६।।

देखा श्वसुर सुहृद्गण[५] को भी उभयवाहिनी[६] में जो स्थित ।
देख वहाँ अर्जुन ने अपने स्वजनों को सब ओर उपस्थित ।।२७।।

देख उन्हें करुणा से भरकर वह बोला होकर शोकान्वित[७] ।

।। अर्जुन बोला ।।

कृष्ण ! देखता सभी स्वजन मैं युद्धहेतु हैं यहाँ उपस्थित ।।२८।।

---

१. फटा हुआ, २. फैली हुई, ३. समीप से, ४. पिता और पिता तुल्य, ५. भला चाहने वाले, ६. दोनों सेना, ७. शोक करता हुआ

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।।२९।।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।।३०।।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।।३१।।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।।३२।।

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।।३३।।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।।३४।।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ।।३५।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ।।३६।।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।३७।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।।३८।।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।३९।।

• सत्य अमृतवाणी है, वही सनातन नियम है ।

हो रहे हमारे अंग शिथिल मुख सूखा जाता है भगवन् ।
है काँप रहा मेरा शरीर रोमाञ्चित होता सारा तन ।।२९।।

है छूट रहा गाण्डीव हाथ से त्वचा रही है सारी जल ।
हो रहा भ्रमित[1] मेरा मन मैं हूँ गिरा चाहता हुआ विकल ।।३०।।

मैं देख रहा हूँ सब लक्षण विपरीत जा रहे हैं केशव ।
कल्याण देखता नहीं मारकर स्वजनों को रण में माधव ।।३१।।

नहीं चाहता विजय राज्य सुख नहीं भोग मुझको वांछित ।
हमें राज्य सुख क्या होगा जीवन भी अब नहीं अभिलषित[2] ।।३२।।

राज्य भोग सुख की अभिलाषा जिन के हेतु हमें वांछित[3] ।
धन जीवन की तज आशा वे ही रणमें यहाँ उपस्थित ।।३३।।

पिता पुत्र आचार्य पितामह आदि सभी मेरे ही जन ।
पौत्र श्वसुर मामा साले सम्बन्धी हैं ये सभी स्वजन ।।३४।।

इन्हें मारना नहीं चाहता मारे जाते भी मधुसूदन ।
इस पृथ्वी की तो बात कहा यदि मिले त्रिलोकी का शासन ।।३५।।

ताऊ[4] के इन पुत्रों को सुख क्या पाऊँगा मार जनार्दन ।
इन आततायियों को हत हम, केवल पाप करेंगे धारण ।।३६।।

उचित नहीं है इन्हें मारना कौरव मेरे वन्धु स्वजन ।
स्वजनों को ही मार मिलेगा क्या सुख हमको मधुसूदन ।।३७।।

नष्ट बुद्धि ये हुये लोभवश इनको यद्यपि नहीं ज्ञान ।
कुलनाश किये के दोषों का मित्रद्रोह का अघ[5] महान ।।३८।।

हम दोष जानते हुये नाश करने का कुल के मधुसूदन ।
इस घोर पाप से अपने को ही क्यों न हटालें इस कारण ।।३९।।

---

१. घूमता हुआ, २. इच्छित, ३. [illegible], ४. बड़े पिता, ५. पाप

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।।४०।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ।।४१।।

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।।४२।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ।।४३।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ।।४४।।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ।।४५।।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ।।४६।।

।। सञ्जय उवाच ।।

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।।४७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां अर्जुनविषादयोगो नाम
प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

●●

● उसी काम का करना ठीक है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े और जिसका फल मनुष्य प्रसन्न-चित्त से ग्रहण करे।

कुल के नाश हुये पर तो है मिट जाता कुलधर्म सनातन।
धर्मनाश होने पर होता, कुल में अधर्म का आवर्तन[1] ।।४०।।

जब अधर्म बढ़ता कुल की नारी हो जातीं दूषित[2] ।
केशव दूषित नारी से तो प्रजा वर्णसंकर कुत्सित[3] ।।४१।।

साथ कुलघ्न[4] सभी कुल के ये संकरवर्ण नरक के कारण।
श्राद्धकर्म में क्षति से होता इनके पितरों का घोर पतन।।४२।।

संकर करने वाले कुलघ्न के इन दोषों के ही कारण।
सदा सदा को मिट जाता है जाति धर्म कुलधर्म सनातन।।४३।।

जिनके कुल का धर्म मिट गया ऐसै लोगों को केशव।
अनियत[5] काल नरक में रहना पड़ता सुनते हैं माधव।।४४।।

अहा जानकर के भी हम सब महापाप करने को तत्पर।
स्वजनों के वध हेतु खड़े हैं हम सुख राज्य लोभ में पड़कर।।४५।।

मुझ अशस्त्र प्रतिक्रियाहीन[6] को शस्त्रपाणि यदि ये अनजान।
धृतराष्ट्रपुत्र मारें रण में तो भी हो मेरा कल्याण।।४६।।

।। सञ्जय बोले ।।

शोक विकल चित वह अर्जुन तब इस प्रकार हरि से कहकर।
बैठ गया रथ के पीछे जा धनुष बाण रण में तजकर।।४७।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
अर्जुनविषादयोग नामक पहला अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १ ।।

●●

---

१. आ जाना, २. दोषी, ३. घृणा योग्य, ४. कुल का नाश करने वाला ५. अनिश्चित ६. उत्तर स्वरूप किया न करने वाले

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

साङ्ख्ययोग

॥ सञ्जय उवाच ॥

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

गुरून् हत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयोयद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

• जैसे महान पर्वत हवा के झकोरों से विकंपित नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान लोग निंदा और स्तुति से विचलित नहीं होते।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

दूसरा अध्याय

सांख्ययोग

।। सञ्जय बोले ।।

अति करुणा से प्रेरित जिसके व्याकुलता से सजलनयन[1]।
शोकयुक्त उस अर्जुन से यह वचन कहे तब मधुसूदन।।१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

इस विषम घड़ी में मोह कहाँ से तुमको प्राप्त हुआ अर्जुन।
यह स्वर्ग न कीर्ति प्रदायक[2] ही, करते ऐसा नहीं आर्यजन।।२।।

कायरता को प्राप्त न हो तुम उचित तुम्हें यह नहीं वीरवर।
दुर्बलता तज तुच्छ हृदय की युद्ध हेतु होजा तत्पर।।३।।

।। अर्जुन बोला ।।

युद्धभूमि में भीष्मद्रोण से किस प्रकार मैं हे मधुसूदन।
बाणों को ले युद्ध करूँगा पूजनीय ये दोनों ही जन।।४।।

ये गुरुजन मेरे इन्हें न हत कर भिक्षाशन[3] भी यहाँ उचित।
अर्थ कामना हेतु इन्हें हत, भोगेंगे भोग रक्तरञ्जित[4]।।५।।

नहीं जानते उचित हमें क्या जय होगी उनकी या उन पर।
सम्मुख वे कौरव स्थित जिनको नहीं चाहता जीना हतकर।।६।।

हत स्वभाव मैं कायरतावश धर्मभ्रान्त[5] हो, रहा प्रश्न कर।
शरणापन्न[6] शिष्य निज मुझको शिक्षा दें निश्चित श्रेयस्कर[7]।।७।।

---

१. आँख में आँसू भरे, २. देने वाला, ३. भीख का अन्न खाना, ४. खून में रंगे हुये, ५. धर्म के विषय में भटका हुआ, ६. शरण में आये हुए, ७. कल्याण करने वाली

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।।८।।

।। सञ्जय उवाच ।।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।९।।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।।१०।।

।। श्री भगवानुवाच ।।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।११।।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।१२।।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।१३।।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।१४।।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१५।।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोःतत्त्वदर्शिभिः ।।१६।।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।१७।।

● प्रिय वही बात बोलनी चाहिए, जो सत्य हो और ऐसा न हो कि दूसरे के लिए प्रिय बात बोलने से पाप लगे।

भूराज्य समृद्ध[1] अकण्टक हो देवलोक पर भी अधिकार।

नहीं देखता कर सकते ये इन्द्रियशोषक[2] दुख से पार।।८।।

।। सञ्जय बोले ।।

राजन्, हरि से कहकर ऐसा पार्थ विषादयुक्त[3] अति होकर।
'हे कृष्ण न युद्ध करूँगा मैं' कह बैठ गया वह चुप होकर।।९।।

उभय वाहिनी मध्य शोकरत अर्जुन से तब हे राजन।
बोले हंसते हुये से कृष्ण, पुनि उससे इस भाँति बचन।।१०।।

।। श्री भगवान बोले ।।

जो नहीं शोक के योग्य शोक करता है तू उनके हित।
जीवित या मृत हेतु कभी भी शोक नहीं करते पण्डित।।११।।

ऐसा नहीं कि मैं तू अथवा ये नरेशगण थे न प्रथम।
नहीं कि आगे अब न रहेंगे, हैं हम सब ही नित्य परम।।१२।।

इस शरीर में दशा देह की बचपन युवा बुढ़ापा तीन।
प्राप्ति अन्य काया की वैसे धीर न इसमें मोहविलीन[4]।।१३।।

अर्जुन संयोग विषय इन्द्रिय के सुख दुख शीत उष्ण कर।
आने जाने वाले अनित्य[5] ये, हे भारत, तू इन्हें सहन कर।।१४।।

है व्यथित न होता इनसे जो सुख दुख में रहता एक समान।
परमानन्द प्राप्त उसको ही होता है तू पार्थ जान।।१५।।

सत् का विनाश होता न कभी असत् न रहता विद्यमान।
इस भाँति तत्त्व दोनों का ही वे देख चुके हैं ज्ञानवान।।१६।।

जिससे व्याप्त[6] जगत सारा वह नाशरहित है उसे जान।
कर सके नाश अविनाशी का, नहीं है कोई ऐसा मान।।१७।।

---

१. परिपूर्ण, २. कष्ट से इन्द्रियों को सुखाने वाले, ३. दुख से कातर, ४. मोहित, ५. सदा न रहने वाले, ६. परिपूर्ण

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत ।।१८।।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।१९।।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोन हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।२०।।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ।।२१।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।२२।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।२३।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।२४।।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।२५।।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।।२६।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।२७।।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।।२८।।

● राग के समान कोई आग नहीं; द्वेष के समान कोई पाप नहीं । पंचस्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान कोई दुःख नहीं, और शान्ति के समान कोई सुख नहीं ।

जीव नित्य अविनाशी इसका कोई कहीं नहीं उपमान।
युद्ध करो इस हेतु धनञ्जय देह सभी के नाशवान।।१८।।

जो जानता मारने वाला या इसे जानता होना हत।
दोनों इसको नहीं जानते नहीं मारता या होता हत।।१९।।

यह लेता जन्म न मरता ही न कि होकर होने वाला यह।
सतत अजन्मा नित्य सनातन निहत[1] देह में भी अक्षत[2] यह।।२०।।

शाश्वत[3] अज अविनाशी इसको जो लेता है जान यथार्थ।
पुरुष मारता मरवाता वह पुनः किसी को कैसे पार्थ।।२१।।

है नवीन धारण करता नर जैसे जीर्ण वस्त्र को तजकर।
जीर्ण देह तज वैसे प्राणी लेता पुनः नया धारण कर।।२२।।

शस्त्र न सकते काट इसे कर सकता पावक नहीं दहन।
गीला कर सकता जल न इसे नहीं वायु इसका शोषण।।२३।।

अभेद्य[4] अदाह्य[5] अक्लेद्य[6] सदा सम्भव न कभी इसका शोषण।
सर्वव्याप्त[7] यह नित्य अचल है पूर्ण सदा स्थिर सत्य सनातन।।२४।।

कहते अव्यक्त[8] अचिन्त्य[9] इसे दोषरहित पुनि यह महान।
है अतः शोक करना न उचित, पार्थ इसे इस भाँति जान।।२५।।

सदा जन्म लेता मरता यदि यही मानता सत्य सार्थ[10]।
तदपि शोक करना न उचित क्यों वृथा शोक रत पुनः पार्थ।।२६।।

जातक[11] की मृत्यु जन्म मृत का जब पुनः पुनः होना निश्चित।
है नहीं टालने योग्य विषय तब तुम्हें शोक करना न उचित।।२७।।

जीव अदृश्य जन्मपूर्व थे मध्य में ही उनका दर्शन।
मरने पर न दिखाई देंगे, अर्जुन शोक का क्या कारण।।२८।।

---

१. मरे हुये, २. ज्यों का त्यों, ३. सदा से स्थित, ४. जिसे भेदा न जा सके, ५. जो जलाया न जा सके, ६. जो भिगोया न जा सके, ७. सर्वत्र परिपूर्ण, ८. अप्रकट, ९. जिसका चिंतन न हो सके, १०. वास्तविक, ११. जन्म लेने वाला

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।२९।।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।३०।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।३१।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।३२।।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।३३।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।३४।।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।३५।।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।।३६।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।३७।।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।३८।।

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।३९।।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।४०।।

● मन को उद्विग्न होने से बचा; मन को वश में कर; मन के सुचरित का आचरण कर।

कोई चकित हुआ सा दर्शन कोई चकित हुआ सा वर्णन।
सुनता है कोई हुआ चकित, सुनकर भी नहीं जानते जन।।२९।।

आत्मा नित्य अबध्य[1] सभी का सदा देह में रहते भी स्थित।
सम्पूर्ण प्राणियों हेतु पार्थ पुनि तुम्हें शोक करना न उचित।।३०।।

देखते हुये धर्म को भी निज योग्य नहीं होना विचलित।
धर्मयुद्ध से श्रेष्ठ न कोई क्षत्रिय का कर्तव्य विहित[2]।।३१।।

स्वयं प्राप्त यह युद्ध पार्थ है खुला स्वर्ग का द्वार जान।
इस प्रकार का धर्मयुद्ध तो पाता क्षत्रिय भाग्यवान।।३२।।

किन्तु धर्ममय युद्ध इसे यदि नहीं करेगा तो तू सुन।
धर्म कीर्ति खो देगा अपनी पाप प्राप्त होगा अर्जुन।।३३।।

गायेंगे सब अपयश तेरा, वह बना रहेगा सदा अमर।
सम्मानित हित अपयश होता कहीं मृत्यु से अतिशय बढ़ कर।।३४।।

भय से भागा तुमको रण से महारथी मानेंगे सब।
जिनकी मति में हो महान वे तुच्छ गिनेंगे तुमको तब।।३५।।

न कहने योग्य बहुत सी बात कहेंगे सभी वे वैरी जन।
कर तेरे पौरुष की निन्दा बड़ा कौन दुख इससे अर्जुन।।३६।।

जीतोगे सुख राज्य धरा का स्वर्ग प्राप्त होगा मरने पर।
इस हेतु शीघ्र तत्पर हो जा तू रण करने का निश्चय कर।।३७।।

विजय पराजय हानि लाभ में सुखदुख में भी सम होकर।
अर्जुन पाप न होगा तुमको इस भाँति युद्ध करने पर।।३८।।

यह बात सांख्य[3] में कही गई अब कर्म योग में इसको सुन।
बुद्धियोग यह है जिससे तुम कर्मबन्ध तोड़ोगे अर्जुन।।३९।।

प्रारम्भ न इसका नष्ट कभी, विपरीत फलों से दोष रहित।
थोड़ा भी इस धर्म का आश्रय सब प्रकार से करता रक्षित[4]।।४०।।

---

१. जिसको मारा न जा सके, २. उपयुक्त, ३. ज्ञान योग, ४. रक्षा किया हुआ

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।४१।।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ।।४२।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।।४३।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।४४।।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।४५।।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।४६।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।४७।।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।४८।।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।४९।।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।५०।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।५१।।

• जो अभिवादनशील और सदा वृद्धों की सेवा करने वाले हैं, उनके ये चारों गुण बढ़ते हैं—आयु, विद्या, यश और बल।

यहाँ एक ही बुद्धि सुनिश्चित कही गई है कुरुनन्दन।
विविध अनन्त बुद्धियाँ उनकी जिनका होता अस्थिर[१] मन।।४१।।

फल-श्रुतियुक्त वेदवाणी में मोहित मन अज्ञानीजन।
इससे श्रेष्ठ न अन्य प्राप्य[२] कुछ, करते अतिरञ्जित[३] वर्णन।।४२।।

कामनायुक्त स्वर्ग चाहते वे जो जीवन-कर्म फलप्रद।
बहुत क्रियाओं को बतलाते जो ऐश्वर्य और भोगप्रद।।४३।।

ऐश्वर्य भोग में रत जिनका मन वे होते इसमें मोहित।
होते नहीं बुद्धि उनकी स्थिर आत्मतत्त्व में कभी व्यवस्थित[४]।।४४।।

तीनों गुण की अभिव्यक्ति[५] वेद तू होजा इससे संग रहित।
योगक्षेम सब द्वन्द त्याग कर, स्वाधीनचित्त नित सत्वस्थित[६]।।४५।।

पूर्ण जलाशय मिलने पर लघुसर से रहता जितना स्वार्थ।
ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वेदों से भी उतना ही पार्थ।।४६।।

कर्ममात्र अधिकार तुम्हारा फल पाने में नहीं कदाचित।
तू कर्म फलों का हेतु न बन हो कर्म त्याग में रुचि न निहित[७]।।४६।।

आसक्ति त्यागकर कर्मकरो, असिद्धि सिद्धि में हो समान।
होकर समान चित योगस्थित, अर्जुन 'समता' योग महान।।४८।।

इस बुद्धि योग से अन्य कर्म, तो सब प्रकार से जान हीन।
तू कर्मयोग का आश्रय ले, फलइच्छुक होते सभी दीन।।४९।।

बुद्धियुक्त तो यहीं त्यागते, पाप पुण्य दोनों का ही फल।
इस हेतु योग स्थित हो तू यह, कर्म मुक्त होने का कौशल।।५०।।

सब कर्मों से उत्पन्न फलों को त्याग कर्मयोगी विद्वान।
जन्मादि बन्ध से मुक्ति प्राप्त कर पाते हैं वे पदनिर्वाण[८]।।५१।।

---

१. चञ्चल, २. प्राप्त करने योग्य, ३. बहुत बढ़ा-चढ़ा के, ४. स्थिर, ५. प्राकट्य, ६. आत्मा में स्थित, ७. स्थित, ८. मुक्ति

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।५२।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।५३।।

।। अर्जुन उवाच ।।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।५४।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५८।।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।५९।।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।६०।।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६१।।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।

● एक दिन का सदाचारयुक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौ वर्ष के शीलरहित और अमर्यादित जीवन से अच्छा है ।

जब तेरी बुद्धि पार कर लेगी कठिन मोह का दलदल।
श्रवण योग्य या सुने हुये सब विषयों से होगा अविकल[1] ।।५२।।

विविध विषय सुनने से विचलित हुई बुद्धि जब होगी निश्चल।
तब योग प्राप्त कर लेगा तू जब अंत:स्तल में बुद्धि अचल।।५३।।

।। अर्जुन बोला ।।

समाधिस्थ[2] स्थितप्रज्ञ[3] पुरुष का क्या होता केशव लक्षण।
बोलता बैठता चलता वह किस प्रकार से योगीजन।।५४।।

।। श्री भगवान बोले ।।

मन की सभी कामनाओं को भली-भाँति से त्याग पार्थ।
अपने में ही संतुष्ट सदा स्थितप्रज्ञ कहा जाता यथार्थ।।५५।।

उद्विग्न न होता दुख में जो सुख की सकल कामना हीन।
राग क्रोध भय रहित सदा स्थितप्रज्ञ दशा में मुनि वह लीन।।५६।।

जो राग रहित सर्वत्र सभी, शुभाशुभों को करके प्राप्त।
करता द्वेष न होता प्रसन्न, वह मुनि है स्थिर प्रज्ञा[4] प्राप्त।।५७।।

जैसे समेट कछुवा अपने बाह्यांगों को होता है स्थित।
सब विषयों से इन्द्रियगण को है समेट लेता प्रज्ञास्थित।।५८।।

विषय न सेवन करने से होते निवृत्त, पर नहीं राग।
तत्त्व जानकर युक्त पुरुष का हो जाता इसका भी त्याग।।५९।।

लगे यत्न में प्राज्ञपुरुष का हर लेतीं बलपूर्वक मन।
अर्जुन ये इन्द्रिय स्वभाव से ही करने वाली प्रमथन।।६०।।

इन सबको संयत कर मुझ में, युक्त हुआ तू हो जा स्थित।
जिसके वश में ये इन्द्रियगण उसकी प्रज्ञा पार्थ प्रतिष्ठित[5] ।।६१।।

विषयों का चिन्तन करने से, नर की उसमें आसक्ति चरम।
आसक्ति कामना की जननी, कामना विघ्न से क्रोध परम।।६२।।

---

१. शान्तचित्त, २. परमेश्वर में स्थित, ३. जिसकी शुद्ध बुद्धि हो ४. शुद्ध बुद्धि ५. स्थिर

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।६६।।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।६७।।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६८।।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।६९।।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।७०।।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ।।७१।।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां साङ्ख्ययोगो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

●●

● अनुचित और अहितकारी कर्मों का करना आसान है । हितकर और शुभ कर्म परम दुष्कर हैं ।

क्रोध मूढ़ कर देता जिससे हो जाता स्मृति का विघटन[1]।
स्मृति विनाश से बुद्धिनाश पुनि जिससे होता पूर्ण पतन।।६३।।

राग द्वेष से रहित इन्द्रियों, से विषयों में कर विचरण।
अन्तःकरण को कर वश अपने, हो जाता है प्रमुदित मन।।६४।।

विमल प्रसन्न चित्त इसके सब दुःखों का हो जाता अन्त।
शीघ्र विशुद्ध बुद्धि वाले की प्रज्ञा होती स्थिर अत्यन्त।।६५।।

मति न शान्त होती अयुक्त[2] की, नहीं भावना का सम्बल।
भावना हीन को शांति कहाँ, विना शांति किमि सुख अविचल[3]।।६६।।

विषयों में रत इन्द्रियगण में हो जाता जिसके संग मन।
हरलेती अयुक्त की प्रज्ञा जैसे जल में नाव पवन।।६७।।

इसलिये इन्द्रियाँ सब प्रकार से निज विषयों से निग्रहकृत[4]।
महाबाहु जिसकी होती हैं, उसकी प्रज्ञा पूर्ण प्रतिष्ठित।।६८।।

निशा समान ज्ञान जीवों को वहाँ जागता है संयमरत।
सब जीव जागते जिस सुख में उसमें ज्ञानी मुनि निद्रागत[5]।।६९।।

जैसे अचल सिन्धु में सब जल होते प्रवेश भी वह अविचल।
पाता शांति वही न कामरत, जो सब भोग भोगते अविकल।।७०।।

सभी कामना त्याग पुरुष जो करता है निःस्पृह[6] व्यवहार।
शांति प्राप्त कर लेता है वह, मुक्त जो ममता अहंकार।।७१।।

अर्जुन, यह स्थिति ब्रह्मलीन की होता मोह न इसे प्राप्त कर।
अन्तकाल में भी इसमें स्थित, लेता ब्रह्मानन्द[7] प्राप्त कर।।७२।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
साङ्ख्ययोग नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। २ ।।

●●

---

१. क्षय, २. असंयमी, ३. स्थिर शांत, ४. वश में की हुई, ५. सोया, ६. इच्छा रहित, ७. मुक्ति का सुख

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ तृतीयोऽध्यायः

कर्मयोग

।। अर्जुन उवाच ।।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ।।१।।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।२।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।।३।।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।४।।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ।।५।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।६।।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।७।।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।।८।।

• भूख सबसे बड़ा रोग है; शरीर सबसे बड़ा दुःख है—इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यथार्थ में निर्वाण ही परम सुख है।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

तीसरा अध्याय

कर्मयोग

।। अर्जुन बोला ।।

हे कृष्ण ! आपकी मति में है यदि ज्ञान कर्म से श्रेयस्कर[1] ।
तब क्यों हैं मुझ को लगा रहे, करने में पुनि कर्म भयंकर ।।१।।

मोहसे रहे हैं मति मेरी, ये मिश्रित सी बातें कहकर ।
होवे कल्याण प्राप्त जिससे, वह एक बतावें निश्चित कर ।।२।।

।। श्री भगवान बोले ।।

दो प्रकार की निष्ठा जग में मैंने जैसी कही पार्थ ।
ज्ञान योग सन्यासी के हित कर्म योग योगी हितार्थ[2] ।।३।।

बिना कर्म आरम्भ किये तो कर्म योग सब विधि असाध्य ।
न तो कर्म के त्याग मात्र से सांख्य सिद्धि होती सुसाध्य[3] ।।४।।

कर्म न किये बिना कोई रह सकता कभी एक भी क्षण ।
प्रकृति गुणों से परवश होकर कर्म किया करता है जनगण ।।५।।

रोक कर्म-इन्द्रियगण से जो, विषयों का निज मन से चिन्तन ।
करता है, उस मूढ़ बुद्धि को, पाखण्डी कहते विद्वज्जन[4] ।।६।।

मन से इन्द्रियगणको वश कर हो अनासक्त[5] वह हे अर्जुन ।
कर्मेन्द्रिय से कर्म योगरत, करता रहता कर्म श्रेष्ठजन[6] ।।७।।

तू नियत कर्म कर कर्मत्याग से करनाकर्म सदा उत्तम ।
कर्म त्याग से तो शरीर का, पोषण होना भी असाध्यतम ।।८।।

---

१. कल्याण करने वाला, २. कल्याण के लिए, ३. सरल, ४. विद्वान लोग, ५. आसक्ति रहित, ६. श्रेष्ठ प्राणी

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।।९।।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।१०।।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।११।।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।।१२।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।१३।।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।१४।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।१५।।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।।१६।।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।।१७।।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।१८।।

● आरोग्य परमलाभ है। संतोष परमधन है। विश्वास परमबंधु है और निर्वाण परमसुख है।

जग में यज्ञ[1] हेतु कर्मों से अन्य कर्म करने में बन्धन।
यज्ञ हेतु ही नित्यकर्म कर अर्जुन अनासक्त रख मन।।९।।

यज्ञ सहित सब प्रजा सृष्टि कर ब्रह्मा ने यह कहा वचन।
इसके द्वारा बढ़ो सदा यह करे इष्ट फलभोग वहन[2]।।१०।।

उन्नत इससे हुये देवगण तुम्हें बनायें वृद्धिप्राप्त।
एक दूसरे की उन्नति कर होओगे तुम श्रेयप्राप्त[3]।।११।।

देंगे तुमको इष्ट-भोगफल, देव वे हुये यज्ञभावित।
चोर वही जो बिना दिये ही, दिये से उनके भोगान्वित[4]।।१२।।

यज्ञशेष का भोगी जो, वह सब पापों से होता मुक्त।
स्वयं भोगता केवल ही जो, भोग हैं उसके पाप युक्त।।१३।।

सब जीवों का जन्म अन्न से अन्न वृष्टि से ही उद्भव।
वृष्टि यज्ञ से ही होती है यज्ञ कर्म से ही सम्भव।।१४।।

श्रोत[5] कर्म का सदा वेद है वेद ब्रह्म से हुआ उदित[6]।
सर्वव्याप्त वह ब्रह्म इसलिए नित्य यज्ञ में रहता स्थित।।१५।।

इस विधि चलता सृष्टि चक्र है जो न चले इसके अनुसार।
पापात्मा इन्द्रिय सुखभोगी, जीवन उसका है निःसार[7]।।१६।।

आत्मा में ही रति जिसकी है अपने में ही तृप्ति विशेष।
स्वयं आपमें तुष्ट सतत कुछ करना उसको रहा न शेष।।१७।।

अर्थ न करने से कुछ उसका, नहीं करे तो भी कुछ आशय[8]।
सम्पूर्ण प्राणियों में भी कुछ, रहा न उसका अर्थ व्यपाश्रय[9]।।१८।।

---

१. परमेश्वर निमित्त शुभ कर्म २. प्रदान, ३. कल्याण प्राप्त, ४. भोग करते, ५. जहाँ से निकले, ६. प्रकट, ७. व्यर्थ, ८. अभिप्राय, ९. लेना-देना

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।१९।।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।।२०।।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।२१।।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।२२।।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।२३।।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।।२४।।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ।।२५।।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।।२६।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।।२७।।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।।२८।।

• चन्दन या अगर, कमल या जूही इन सबकी सुगंध से सदाचार की सुगंध श्रेष्ठ है ।

इस हेतु सदा कर्तव्य कर्म का अनासक्त हो करो वहन।
आसक्तिहीन कर कर्मों को प्राणी कर लेता मुक्तिवरण।।१९।।

कर्मों से ही जनक आदि सब परम सिद्धि को हुये प्राप्त।
कर्म करो तुम भी जिससे हो सके लोकसंग्रह[1] सुप्राप्त।।२०।।

श्रेष्ठ पुरुष जैसा करता है वैसा करते सभी आचरण।
उसका कृत प्रमाण बन जाता सब ही करते उसे अनुसरण[2]।।२१।।

प्राप्त नहीं जो तीन लोक में कुछ भी ऐसा मुझको पार्थ।
इस हेतु न कुछ कर्तव्य मुझे, करता रहता तदपि यथार्थ।।२२।।

हुआ सजग मैं ही कर्मों का यदि न करूँ जो सदा आचरण।
कर्म त्याग देंगे सब ही जन मेरा करते हुये अनुसरण।।२३।।

करता न रहूँ यदि कर्म सदा, होऊँ सभी लोक का नाशक।
इस प्रजासृष्टि का विध्वंसक, जग में संकरता[3] का कारक।।२४।।

हो आसक्त कर्म को जैसे अज्ञानी करते भारत।
जगहित कारण ज्ञानी जन भी अनासक्त कर्मों में रत।।२५।।

आसक्त कर्म में अज्ञानी को, ज्ञानी करे नहीं विचलित।
शुभकर्म करावे उससे सब करते हुये स्वयं प्रज्ञास्थित[4]।।२६।।

किये जा रहे प्रकृति गुणों से सब प्रकार से सारे कृत।
कर्ता निज को मान रहा है अहंकार से मोहित चित।।२७।।

भाग पृथक गुणकर्मों का जो जान चुके हैं वे ज्ञानीजन।
आसक्त न होते कभी मान यह, गुण में गुण का आवर्तन।।२८।।

१. सृष्टि का सुनियोजन, २. पीछे चलना, ३. वर्ण संकरता, ४. बुद्धिमान

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ।।२९।।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ।।३०।।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ।।३१।।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ।।३२।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।।३३।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।३४।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।।३५।।

।। अर्जुन उवाच ।।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ।।३६।।

।। श्री भगवानुवाच ।।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।३७।।

• सदा सच बोलना, क्रोध न करना और याचक को यथेच्छ दान देना—इन तीनों बातों से मनुष्य देवताओं के निकट स्थान पाता है।

होते आसक्त कर्म गुण में प्रकृति गुणों से मोहित चित।
मन्द बुद्धि उन अज्ञजनों को ज्ञानी करे नहीं विचलित।।२९।।

आत्मतत्त्व में चित्त निहितकर सब कर्मों को मुझमें त्याग।
शोक रहित हो करो युद्ध तज सब आशा ममता में राग।।३०।।

सदा कर्म करता जो मानव मेरी इस मति के अनुसार।
दोषदृष्टि तज श्रद्धायुत वह कर्मबन्ध से होता पार।।३१।।

दोषदृष्टियुत[1] चलता मेरे नहीं जो इस मति के अनुकूल।
नष्ट हुआ ही समझो उसको मूढ़ जो चलता है प्रतिकूल[2]।।३२।।

चेष्टा करते ज्ञानीजन भी निज स्वभाव के ही अनुसार।
प्रकृति तुल्य ही सभी वर्तते कौन इसे सकता निरुवार[3]।।३३।।

इन्द्रियगण का निज विषयों में रागद्वेष रहता है स्थित।
इनके वश में मत होओ ये बाधक करते सदा अहित।।३४।।

सविधि आचरित परधर्मों से, कहीं श्रेष्ठ निजधर्म अवर[4]।
परधर्म भयावह है अपने में, है मरना भी श्रेयस्कर।।३५।।

।। अर्जुन बोला ।।

केशव नहीं चाहते भी यह किसके द्वारा प्रेरित होकर।
पुरुष पाप करता है मानो बलपूर्वक नियुक्त सा होकर।।३६।।

।। श्री भगवान बोले ।।

कामना रजोगुण से सम्भव बन जाती है क्रोध महान।
भोगी महा महाअघकारी[5] इसमें इसको बैरी जान।।३७।।

---

१. दोष देखने वाला, २. विरुद्ध, ३. हटा, ४. निर्बल, ५. बहुत पाप करने वाला

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।३८।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।३९।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।४०।।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।४१।।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।४२।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।४३।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां कर्मयोगो
नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

●●

● काया को उद्विग्न होने से बचा; काया का दान; दमन कर; काया के दुश्चरित को छोड़; काया के सुचरित का आचरण कर।

अग्नि धूम[1] से मल से दर्पण गर्भ वसा से आवृत[2] होकर।
जैसे निष्क्रिय सा हो रहता वैसे प्रज्ञा इससे ढककर।।३८।।

सदा विरोधी ज्ञानी की यह इससे आच्छादित[3] है ज्ञान।
कामरूप दुष्पूर[4] अग्नि सा अर्जुन तृप्ति न इसकी मान।।३९।।

बुद्धि और इन्द्रियमन इसके कहे गये हैं वासस्थान।
मोहित करती यह प्राणी को इनके द्वारा ढककर ज्ञान।।४०।।

प्रथम इन्द्रियों से लेकर इन सबको ही अपने वश में कर।
अर्जुन मारडाल इसको है पापी यह विज्ञान ज्ञान हर।।४१।।

तन से परे इन्द्रियाँ इन्द्रिय से मन प्रज्ञा उससे भी पर।
बुद्धितत्व से भी यह आत्मा शाश्वत है यह नित्य परात्पर[5]।।४२।।

प्रज्ञा से परे जान निजको, मति से मनपर किये नियन्त्रण।
अर्जुन, मारडाल दुर्जय[6] इस कामरूप वैरी को तत्क्षण।।४३।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
कर्मयोग नामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ३ ।।

●●

१. धुआँ, २. ढँका हुआ, ३. ढका, ४. कभी न पूरा होने वाला ५. परे से भी परे,
६. जिस पर विजय पाना कठिन हो

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।१।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।।२।।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।३।।

।। अर्जुन उवाच ।।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ।।४।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।५।।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।।६।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।७।।

- वाणी को उद्विग्न होने से बचा; वाणी को संयत रख; वाणी के दुश्चरित को छोड़; वाणी के सुचरित का आचरण कर।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

चौथा अध्याय

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

यह अविनाशी योग सूर्य को मैंने किया प्रथम उपदेश।
रवि से मनु इक्ष्वाकु पुनः मनु से पाये यह योगादेश[१] ।।१।।

ऐसे हुआ राजऋषियों में परम्परागत[२] इसका ज्ञान।
बहुत समय से लुप्त हो गया पार्थ पुनः यह योग महान ।।२।।

वही पुरातन योग बताया मैंने तुमको पुनः आज।
मेरे भक्त मित्र प्रिय हो तुम, इससे तुम्हें रहस्य राज ।।३।।

।। अर्जुन बोला ।।

जन्म अभी है हुआ आपका जन्म सूर्य का आदि पुरातन।
कैसे मानूं कहा आपने इसे आदि में योग सनातन ।।४।।

।। श्री भगवान बोले ।।

बीत चुके हैं जन्म बहुत से, मेरे और तुम्हारे भारत।
जान रहा हूँ मैं सबको, पर, तुम्हें परंतप[३] हैं वे अविदित ।।५।।

अज अनादि अविनाशी होते, सभी प्राणियों का ईश्वर।
मैं अपनी प्रकृति स्ववश करके आता हूँ स्वयं रूपधर ।।६।।

जब जब होती हानि धर्म की बढ़ता बहुत अधर्म वीरवर[४]।
तब तब प्रगट हुआ मैं करता स्वयं आपको आप सृजन[५] कर ।।७।।

---

१. योग का उपदेश, २. पीढ़ी से पीढ़ी, ३. श्रेष्ठ कर्म करने वाला, ४. महावीर,
५. बनाकर

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।८।।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।९।।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।।१०।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।११।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।।१२।।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।।१३।।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।।१४।।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।।१५।।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।१६।।

● राग के समान कोई आग नहीं; द्वेष के समान कोई अनिष्ट ग्रह नहीं; मोह के समान कोई जाल नहीं, और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।

सज्जन की रक्षा नाश दुष्ट का, करने हित होकर तत्पर[1] ।

पुनः धर्म के स्थापन हित युग युग में होता प्रगट देहधर ।।८।।

जन्म कर्म सब दिव्य[2] हमारे इस रहस्य को पूर्ण समझकर ।
देह त्यागकर पुनः न आता प्राप्त मुझे हो जाता है नर ।।९।।

वे राग क्रोध भय रहित बहुत से जो थे मुझ में ही अनुरत[3] ।
इस ज्ञान रूप तप से पुनीत हो प्राप्त किये मम धाम महत् ।।१०।।

जो भजता जिस भाँति मुझे मैं, वैसे ही करता उसे स्मरण ।
करते हैं पथ का मेरे ही, मनुज सर्वथा सभी अनुसरण ।।११।।

यहाँ कर्म की सिद्धि चाहते मानव करते हैं देवार्चन[4] ।
नर शरीर में निज कर्मों से शीघ्र सिद्धि करते वे अर्जन ।।१२।।

मैंने ही रचा चार वर्णों को पृथक् पृथक् गुण कर्मानुसार ।
इसका कर्ता मुझ अव्यय को तब भी तुम जानो अकर्तार[5] ।।१३।।

कामना कर्मफल की न मुझे, कर्म न करते लिपायमान ।
नहीं कर्मबन्धन में आता, लेता मुझको इस विधि जान ।।१४।।

पहले मुक्ति कामना वाले इस भाँति जानकर किये कर्म ।
उन पूर्वजनों जैसा ही तुम भी करो तुम्हारा यही धर्म ।।१५।।

क्या अकर्म है पुनः कर्म क्या इसमें हैं ज्ञानी भी मोहित ।
जिसे जान तू अशुभ तरेगा मर्म करूँगा तुझे प्रकाशित[6] ।।१६।।

---

१. तैयार २. दैवी, ३. लगे हुए, ४. प्राप्त करना, ५. न करने वाला, ६. स्पष्ट

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।।१७।।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।।१८।।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ।।१९।।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ।।२०।।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।२१।।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ।।२२।।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।।२३।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।२४।।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ।।२५।।

● जो प्राणियों की हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो संसार में न दी हुई चीज को उठा लेता है अर्थात् चोरी करता है, जो परायी स्त्री के साथ सहवास करता है, जो शराब पीता है, वह मनुष्य लोक में अपनी जड़ आपही खोदता है ।

क्या है कर्म जानना हितकर उसी भाँति पुनि क्या अकर्म ।

क्या विकर्म ज्ञातव्य[1] पुनः बड़ा गहन यह सभी मर्म ।।१७।।

जो अकर्म में कर्म देखता पुनि अकर्म में भी जो कर्म ।
मनुजों में वह बुद्धिमान है योगी वही पूर्ण कृतकर्म[2] ।।१८।।

हैं कार्यारम्भ सभी जिसके कामनाहीन संकल्परहित ।
जल चुके कर्मफल ज्ञान अग्नि से उसे विज्ञ[3] कहते पण्डित ।।१९।।

आसक्ति हीन सन्तुष्ट सदा वह त्याग कर्मफल का आश्रय ।
सदा कर्म में रत रहते भी करता नहीं कर्म का सञ्चय ।।२०।।

संयत[4] शरीर मन है जिसका त्याग चुका है भोग परिग्रह[5] ।
देह निमित्त कर्म करते भी पाप रहित ही रहता है वह ।।२१।।

तुष्ट सदा जो स्वयं प्राप्त में, विरहित द्वन्द्व जो ईर्ष्याहीन ।
जो समचित्त असिद्धि सिद्धि में करते कर्म भी बन्धन हीन ।।२२।।

पूर्ण[6] असंग मुक्त है जो नर ज्ञान बीच जिसका मन लीन ।
यज्ञ निमित्त कर्म करता जो, वे सभी कर्म होते विलीन ।।२३।।

ब्रह्म ही अग्नि श्रुवा भी ब्रह्म हवि है ब्रह्म ब्रह्म ही अर्पक[7] ।
ब्रह्मधाम को ही जाता है ब्रह्मकर्म में चित्त समर्पक[8] ।।२४।।

देव दूसरे अर्चन करते होकर उसमें ही परिनिष्ठित[9] ।
अन्य ज्ञान दर्शन अभेद से आत्मतत्त्व ब्रह्माग्नि समर्पित ।।२५।।

---

१. जानने योग्य, २. सफल ३. विद्वान, ४. वश में, ५. ग्रहण करना ६. आसक्तिरहित, ७. होता, ८. पूरी निष्ठा से समर्पण करने वाला, ९. भेदरहित

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।

शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।२६।।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।२७।।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।।२८।।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।।२९।।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ।।३०।।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।३१।।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ।।३२।।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।३३।।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।३४।।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।।३५।।

• यह लोहे का मुरचा ही है, जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप-कर्म ही उसे दुर्गति को पहुँचाते हैं।

करते श्रोत्र आदि इन्द्रिय को संयमाग्नि[1] में अन्य समर्पित।
शब्द आदि विषयों को कोई रागहीन इन्द्रिय में अर्पित।।२६।।

सभी इन्द्रियों के कर्मों को प्राणों के भी सब व्यवहार।
संयमयोगाग्नि[2] ज्ञानमय में अन्य हैं करते प्रत्याहार[3]।।२७।।

द्रव्यसाध्य[4] तपसाध्य यज्ञ पर अन्य कई होते योगाश्रित।
ज्ञानयज्ञ स्वाध्यायपरक[5] पर यत्नशील कुछ व्रती प्रशंसित।।२८।।

प्राणकी आहुति कर अपान में प्राण अग्नि में अन्य अपान।
बाधित कर निःश्वास श्वासगति प्राणायाम में अन्य सुजान।।२९।।

करते अन्य सुसंयत योगी प्राणों में ही हवन प्राण।
नष्ट पाप यज्ञों से वे सब यज्ञ के वेत्ता योग्य महान।।३०।।

जो यज्ञशेष अमृतभोगी, पाते हैं धाम अनामय[6]।
यज्ञहीन को लोक न यह पर लोक पार्थ पुनि क्यों सुखमय।।३१।।

इस भाँति वेद में यज्ञ बहुत कहे गये हैं विधानयुक्त।
सभी यज्ञ कर्मों से सम्भव, जान इसे जन होते मुक्त।।३२।।

वस्तुसाध्य यज्ञों से अर्जुन ज्ञान यज्ञ अति ही श्रेयस्कर।
होता अवसान[7] सभी कर्मों का इस परम ज्ञान को ही पाकर।।३३।।

विनयावनत[8] प्रणाम प्रश्नकर पुनि सेवाकर उसे जान।
वे ज्ञानी परमतत्ववेत्ता उपदेश करेंगे तुझे ज्ञान।।३४।।

जिसे जानकर मोह तुझे पुनि कभी नहीं होगा पाण्डव।
अपने में सभी जीवदर्शन जिससे मुझमें भी है सम्भव।।३५।।

---

१. संयम करने की क्रिया रूप अग्नि, २. संयम और योग की अग्नि, ३. लौटा देना, ४. वस्तुओं से होने वाला, ५. स्वाध्याय पर आश्रित, ६. विशुद्ध, ७. अन्त, ८. विनयपूर्वक, झुककर

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ।।३६।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।३७।।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।३८।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।३९।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।४०।।

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।।४१।।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम
चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

●●

● बहुत बोलने से कोई पंडित नहीं होता। जो क्षमाशील, वैररहित और अभय होता है, वही पंडित कहा जाता है।

सभी प्राणियों से भी बढ़कर यदि पाप कर्म में है तू रत।
उस ज्ञानतरणि[1] से पाप सिन्धु सब पार करेगा तू भारत।।३६।।

समिधकाष्ठ[2] को जैसे पावक कर देता है भस्म जलाकर।
सभी कर्म को ज्ञान अग्नि भी कर देता है भस्म जलाकर।।३७।।

पावनकर्ता नहीं लोक में कुछ भी है इस ज्ञान समान।
कर्मयोग से स्वयं समय से अर्जुन लेगा उसको जान।।३८।।

इन्द्रियजित श्रद्धालु प्राप्त करता है ज्ञान हुआ तत्पर।
ज्ञानलाभ कर परम शांति को पा लेता है वह सत्वर[3]।।३९।।

संशयरत[4] श्रद्धाविहीन का, अज्ञानी का होता नाश।
संशयरत को नहीं यहाँ या अन्यलोक में सुख की आश।।४०।।

योगयुक्त हो कर्म मिट गये ज्ञानप्राप्त कर जिसका संशय।
कर्म नहीं कर सकते बन्धन आत्मजयी[5] का कभी धनञ्जय।।४१।।

अज्ञानजनित[6] निज मन का संशय ज्ञान खड्ग[7] से तुम खण्डितकर।
सतत[8] पार्थ हो योग परायण उठो युद्ध करने को तत्पर।।४२।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानकर्म-
संन्यासयोग नामक चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ४ ।।

●●

---

१. ज्ञान रूपी नौका, २. हवन की लकड़ी, ३. शीघ्र, ४. शंकालु, ५. अन्तःकरण को वश में करने वाले, ६. अज्ञान से उपजा, ७. ज्ञान की तलवार, ८. सर्वदा

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कर्मसंन्यासयोग

।। अर्जुन उवाच ।।

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।।१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ।।२।।

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।३।।

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।४।।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।।५।।

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।।६।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।७।।

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन्स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ।।८।।

● जो पुरुष ईर्ष्यालु, मात्सर्ययुक्त और शठ है, वह बहुत मधुर बोलने या सुंदर रंग-रूप मात्र के कारण साधु नहीं हो सकता।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

पाँचवाँ अध्याय

कर्मसंन्यासयोग

।। अर्जुन बोला ।।

कर्मत्याग की पुनः योग की किये प्रशंसा होता संशय।
हे कृष्ण! श्रेयप्रद[१] जो दोनों में एक कहें वह कर निश्चय।।१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

कर्मयोग संन्यास उभय[२] ही हैं यद्यपि ये श्रेयस्कर।
कर्मयोग ही इन दोनों में कर्मत्याग से है हितकर।।२।।

उसे नित्य संन्यासी समझो द्वेषराग दोनों को छोड़।
द्वन्दरहित हो सुखपूर्वक जो देता सारे बन्धन तोड़।।३।।

सांख्य योग को पृथक् बताते ज्ञानी नहीं बुद्धिनिर्बल[३]।
प्राणी किसी एक में भी स्थित पाता इन दोनों का फल।।४।।

कर्मयोग से पाता वह फल जिसे सांख्य[४] से वे ज्ञानीजन।
सांख्य योग को फल में सम जो, देखता सत्य उसका दर्शन।।५।।

बिना योग संन्यास प्राप्ति करने में अर्जुन बहुत क्लेश।
योगपरायण शीघ्र ब्रह्मपद पा लेता है निर्विशेष[५]।।६।।

जो अंतःकरण सहित इन्द्रियजित योगपरायण शुद्ध चित्त।
सब जीवों का आत्मभूत[६] वह करते भी होता न लिप्त।।७।।

देखते सूंघते छूते सुनते चलते खाते सुप्तश्वसित।
नहीं कर रहा कुछ भी वह, यही मानता सिद्ध तत्त्ववित[७]।।८।।

---

१. कल्याण करने वाला, २. दोनों, ३. बुद्धिहीन, ४. ज्ञान योग, ५. कैवल्य, ६. सब में अपने को देखने वाला, ७. तत्त्व को जानने वाला

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।।९।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।१०।।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।११।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।१२।।

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।।१३।।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।१४।।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।।१५।।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।१६।।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।१७।।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।१८।।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।१९।।

● श्रद्धावान्, शीलवान्, यशस्वी और विद्वान् जिस देश में जाता है, वहाँ पूजा जाता है।

कहते, करते ग्रहण-त्याग भी, खोलते आँख, मूदते समय।
वर्तती[१] इन्द्रियाँ निज विषयों में ऐसा हो उसका निश्चय।।९।।

अनासक्त कर्मों को करते रहते जो कर ब्रह्मसमर्पित[२]।
जल से कमलपत्र जैसे वे रहते हैं पापों से वञ्चित[३]।।१०।।

करते रहते कर्म देह मन बुद्धि इन्द्रियों से योगीजन।
आत्मशुद्धि करने हित केवल, उनका रहता यही प्रयोजन।।११।।

फल की आशा त्याग कर्मकर योगी पाता शांति महान।
योगविमुख फल की इच्छा से ही बँध जाता है अज्ञान।।१२।।

नौ द्वारों वाले शरीर में न करता करवाता किञ्चित।
त्याग सभी कर्मो को मन से, रहता पुरुष सदा सुख में स्थित।।१३।।

न कर्तृत्व न कर्मों को ही करता जग में जगदीश सृजन।
न संयोग कर्मो का फल से, होता स्वभाव से आवर्तन।।१४।।

न तो पाप को नहीं पुण्य को, किसका भी करता ईश ग्रहण।
अज्ञानाच्छन्न[४] ज्ञान कारण, ही मोहित होते हैं सब जन।।१५।।

आत्म ज्ञान के द्वारा जिसका नष्ट हो गया है अज्ञान।
रवि की भाँति प्रकाशित करता आत्म तत्व का निश्चित ज्ञान।।१६।।

उसी में चित्त उसी में बुद्धि उसी में निष्ठा उसको अर्पण।
पाप नष्ट हो चुके ज्ञान से, गये न उसका पुनि आवर्तन।।१७।।

विद्याविनययुक्त ब्राह्मण में गो हाथी में ज्ञानीजन।
श्वान और चाण्डाल प्रभृति[५] में हैं करते वे समदर्शन[६]।।१८।।

यहीं जगत को जीत चुके हैं जिनका मन समता में स्थित।
परम ब्रह्म निर्दोष और सम इससे सदा ब्रह्म में स्थित।।१९।।

---

१. व्यवहार करती, २. परमात्मा की शरण प्राप्त, ३. छूटे हुये, ४. अज्ञान से ढके, ५. आदि, ६. समान देखना

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मुनिः मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां कर्मसंन्यासयोगो नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

●●

● सौ वर्ष के आलसी और वीर्यहीन जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्मण्यता का जीवन कहीं अच्छा है।

कर प्रिय को प्राप्त न जो प्रसन्न, अप्रिय प्राप्ति से न उद्वेलित[1]।

स्थिर बुद्धि सदा संशयविहीन, तत्वज्ञ[2] ब्रह्म में रहता स्थित ।।२०।।

वाह्य[3] विषय रसहीन स्वयं में पाता है सात्विक आनन्द।
ब्रह्मध्यानरत युक्त पुनः वह पाता है अक्षय आनन्द ।।२१।।

इन्द्रिय विषय संग से उपजे भोग सभी हैं दुःख निधान[4]।
आदि अन्त उनका निश्चित है रमते उनमें न बुद्धिमान ।।२२।।

देहपात के पहले सक्षम जो सहने में वेग धीर वर।
काम क्रोध से होने वाला, वह योगी है वही सुखी नर ।।२३।।

अपने में ही सुख से रमता जो अपने में आप ज्ञानमय।
ब्रह्मात्मा एकता प्राप्त वह पाता है पद परम अनामय ।।२४।।

जो क्षीणपाप संशयविहीन जिनके वश में हैं इन्द्रिय मन।
सभी प्राणियों के हित में रत ब्रह्मप्राप्त होते वे ऋषिजन ।।२५।।

काम क्रोध से रहित नियत चित, आत्मतत्त्व का जिसे ज्ञान।
सभी ओर से उसे प्राप्त है, जीते जी ही पद निर्वाण ।।२६।।

बाहर के सब विषय त्याग भ्रूमण्डल[5] जिसकी दृष्टिअचल।
प्राण अपान वायु नासागत[6] हैं समान जिसके अविचल ।।२७।।

ऐसा मुनि जो मोक्ष परायण जिसके मन इन्द्रियाँ बुद्धिवश।
कामनाहीन भय क्रोध रहित वह सदा मुक्त सर्वथा स्ववश ।।२८।।

सब तप यज्ञों का भोक्ता सब लोकों का परमेश्वर मान।
सुहृद जान सब जीवों का है मुझको पाता शांति महान ।।२९।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मसंन्यासयोग
नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। ५ ।।

●●

---

१. उद्विग्न, २. ज्ञानी, ३. बाहरी, ४. घर, ५. दोनों भ्रुवों के मध्य में, ६. नाक में स्थित

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ षष्ठोऽध्यायः

आत्मसंयमयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निः न चाक्रियः ।।१।।

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ।।२।।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।३।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।४।।

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।५।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।६।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।७।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।८।।

सुहृन् मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।।९।।

• मन रूपी जल जब निर्मल और स्थिर हो जाता है, तब उसमें आत्मा का दिव्य रूप झलकने लगता है ।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

छठा अध्याय

आत्मसंयमयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

त्याग कर्मफल की अभिलाषा कार्य कर्म करता वह युक्त।
वह योगी सन्यासी भी वह पावक त्यागी न कर्ममुक्त[1] ।।१।।

जिसको सांख्य कहा जाता है अर्जुन योग भी उसको जान।
संकल्प त्याग के बिना न कोई हो सकता है युक्त[2] मान।।२।।

है कर्मयोग के साधक को कर्तव्य कर्म करना कारण।
योगप्राप्त हो जाने पर श्रेयस्कर संकल्प निवारण[3] ।।३।।

अनासक्त[4] इन्द्रिय भोगों से, कर्मों में भी जो अनासक्त।
कहते हैं योगारूढ़[5] उसे, जो संकल्पों से हो विरक्त।।४।।

निज उद्धार स्वयं कर डाले जिससे उसकी गति न कष्ट कर।
शत्रु मित्र वह स्वयं आप हैं उस पर ही उसकी गति निर्भर।।५।।

अपना बन्धु वही जीवात्मा जिसने मन इन्द्रिय ली जीत।
अपना शत्रु स्वयं अजितात्मा[6] जिसकी गति इसके विपरीत।।६।।

आत्मवृत्ति[7] स्वाधीन शांतचित योगी जो परमात्मा स्थित।
शीत उष्ण मानापमान सुख-दुख में भी जो समान चित्त।।७।।

ज्ञान विज्ञान तृप्त अन्तः जो विकृति[8] रहित सब इन्द्रियजित।
मिट्टी और स्वर्ण सम जिसके योगी वह परमात्मा स्थित।।८।।

सुहृद मित्र वैरी सम जिसको द्वेषी बन्धु भी उदासीन[9]।
पापी सज्जन भी समान वह तो सबसे ही उच्चासीन।।९।।

---

१. कर्मों को न करने वाला, २. योगी, ३. दूर करना, ४. आसक्तिरहित, ५. योग में लगा, ६. असंयमी, ७. अंतःकरण की गति, ८. विकार, ९. जिससे कोई प्रयोजन न हो।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।१०।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।११।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।१२।।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।१३।।

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।१४।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।१५।।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।१६।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।१७।।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।।१८।।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।।१९।।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।।२०।।

● क्रोध को क्षमा से जीतो। मान को विनय से जीतो। कपट को सरलता से जीतो। लोभ को संतोष से जीतो।

देहेन्द्रियाँ[1] मन सहित जीतकर योगी सदा एकान्त स्थित।
आशा, संग्रह त्यागं करे वह आत्मा को परमात्मा-स्थित ।।१०।।

वह शुद्ध भूमि में स्थित होकर पुनि अपना आसन स्थिर कर।
न अति नीचा न अति ऊँचा कुश मृगचर्म[2] वस्त्र हो ऊपर ।।११।।

उस आसन पर आसीन हुआ मन इन्द्रिय क्रिया स्ववशकर।
वह आत्म शुद्धि हित योगाश्रित अभ्यास करे मनस्थिर कर ।।१२।।

काया शिर ग्रीवा एक सीध में अचल रूप से धारण कर।
अन्य दिशाओं को न देखता, दृष्टि स्थिर कर नासिकाग्र[3] पर ।।१३।।

ब्रह्मचर्य व्रतलीन शांतचित भीति[4] रहित वह होकर स्थित।
मनवशकर मेरे में रत हो, योगी मुझमें रहे सदा स्थित ।।१४।।

इस प्रकार हो आत्म निरत वह मनवशकर योगी स्वच्छन्द।
मुझमें स्थित वह चरमशांतिमय[5] पा लेता है परमानन्द ।।१५।।

अति भोजी न विरतभोजी[6] को सम्भव है पाना यह योग।
अति निद्रालु न नींद हीन को है इसका सम्भव संयोग ।।१६।।

आहार विहार उचित जिसका उचित कार्य में जिसका योग।
नींद जागरण उभय यथोचित सिद्ध उसे दुखनाशक योग ।।१०।।

मन पूर्ण रूप से परमात्मा में करके भली भाँति स्थित।
सब भोगों से निःस्पृह है जो कहते उसको योगस्थित ।।१८।।

निर्वात[7] स्थान में दीपशिखा जैसे स्थिर उसके उपमान।
चित्त नियोजित[8] योगी की गति परमात्मा का करते ध्यान ।।१९।।

नियंत्रित योगाभ्यास से मन सभी से हो जाता उपराम[9]।
अपने में परमात्मा दर्शन कर के होता है पूर्ण-काम[10] ।।२०।।

---

१. शरीर और इन्द्रियाँ, २. मृगछाला, ३. नाक का अगला भाग, ४. भय, ५. परम शान्त, ६. भोजन छोड़ने वाला, ७. वायुरहित, ८. वश में, ९. शान्त, १०. कृतार्थ (संतुष्ट)

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

• शरीर और इंद्रियों के क्लान्त होने पर भी जो समभाव रखता है, वह सन्मार्ग से विचलित नहीं होता ।

सूक्ष्म बुद्धि से इन्द्रिय अतीत ग्रहण योग्य जो परमानन्द।
पाकर जिसे न विचलित होता आत्मतत्त्व से वह सानन्द[१] ।।२१।।

जिसे प्राप्त कर अन्य लाभ कुछ गिनता नहीं अधिक उससे वह।
जिसमें स्थित हो कभी न विचलित होता अति दारुण[२] भी दुख सह ।।२२।।

संयोग रहित भवक्लेशों[३] से, जो योग परम तू उसे जान।
उत्साह धीरता से लग जा उसमें निश्चित कर्तव्यमान ।।२३।।

संकल्पजन्य[४] इच्छाओं को पूर्णरूप से सभी त्याग कर।
मन के संग सभी इन्द्रियगण सब प्रकार सबको संयतकर ।।२४।।

धीरे धीरे विरति[५] प्राप्त कर धीर बुद्धि से तू अपना मन।
आत्मतत्व में सदा लगावे नहीं अन्य का करते चिन्तन ।।२५।।

जहाँ जहाँ विचरण करता है विषयों में यह चञ्चल मन।
उन विषयों से दूर हटाकर उससे करे आत्म चिन्तन ।।२६।।

शांत रजोगुण, शांत चित्त जो योगी सब पापों से हीन।
एकीभाव से ब्रह्मस्थित हो, उत्तम सुख में रहता लीन ।।२७।।

पाप रहित वह सतत ध्यानरत परमात्मा में ही सानन्द।
सुखपूर्वक परब्रह्म मिलन सा पा लेता है परमानन्द ।।२८।।

सभी प्राणियों में परमात्मा उसमें सभी जीव हैं कल्पित[६]।
समदर्शन करता है योगी सर्वत्र देखता आत्मा स्थित ।।२९।।

सर्वव्याप्त[७] जो मुझे देखता सबको पुनि मेरे में स्थित।
नहीं अदृश्य मैं उसे कभी न अदृश्य वह मेरे हित ।।३०।।

सभी प्राणियों में स्थित जो मुझको भजता एकत्वनिहित[८]।
सब प्रकार वर्तता हुआ भी, वह योगी है मुझमें स्थित ।।३१।।

---

१. आनन्द के साथ, २. कठोर, ३. सांसारिक दुःखों, ४. संकल्प से उपजी, ५. वैराग्य, ६. केवल कल्पना से दृश्य, ७. सर्वत्र स्थित, ८. अकेले एक ही में

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।३२।।

।। अर्जुन उवाच ।।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ।।३३।।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।३४।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।३५।।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।।३६।।

।। अर्जुन उवाच ।।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।३७।।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ।।३८।।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ।।३९।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।।४०।।

● आसक्ति बन्धन है, अनासक्ति मोक्ष। अतः अपनी आत्मा को सतत आसक्ति से बचाये रखना चाहिए।

सबमें समदृष्टि[१] जिसे अर्जुन सुख क्लेश भी एक समान।
सबमें अपने सरिस देखता सभी योगियों में महान।।३२।।

।। अर्जुन बोला ।।

समता में स्थित होने पर ही योग सिद्धि जो कहे जनार्दन।
नहीं देखता उसकी स्थिरता मन की चञ्चलता के कारण।।३३।।

मन यह चञ्चल प्रमथनकारी[२] केशव सुदृढ और बलवान।
मान रहा मैं इसे रोकना है अति दुष्कर[३] पवन समान।।३४।।

।। श्री भगवान बोले ।।

हे महाबाहु, मन चञ्चल है यह निःसन्देह अति कष्टसाध्य[४]।
विराग और अभ्यास से वश करना है अर्जुन इसे साध्य।।३५।।

नहीं सतत मन वश में जिसके, उसको योग प्राप्ति है दुष्कर।
इसकी सहज प्राप्ति कर लेता, साधन से वह निज मन वशकर।।३६।।

।। अर्जुन बोला ।।

है श्रद्धा तदपि असंयम से, होगया योग से विचलित मन।
योग सिद्धि को प्राप्त न करके क्या गति उसकी पुनि मधुसूदन।।३७।।

क्या उभय लोक से छिन्न भिन्न बादल सा हो जाता नष्ट।
मूढ़चित्त आश्रय विहीन वह महाबाहु, हो सत्पथभ्रष्ट[५]।।३८।।

यह संशय प्रशमन[६] करने में मात्र समर्थ आप मधुसूदन।
अतिरिक्त आपके अन्य नहीं कर सकता यह संदेह शमन[७]।।३९।।

।। श्री भगवान बोले ।।

नहीं लोक में न परलोक में अर्जुन होता उसका नाश।
जो चलता कल्याण मार्ग पर उसे नहीं दुर्गति का त्रास[८]।।४०।।

---

१. समान भाव, २. मथ डालने वाला, ३. कठिन, ४. कठिनता से सिद्ध होने वाला, ५. सही मार्ग से गिरा हुआ, ६. शान्त, ७. शान्त, ८. डर

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।४१।।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।४२।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।४३।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।४४।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।४५।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।४६।।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।।४७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां आत्मसंयमयोगो नाम
षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

●●

● मनुष्य युद्ध में सहस्रों पर विजय पा सकता है, लेकिन जो स्वयं पर विजय प्राप्त कर लेता है, वही सबसे बड़ा विजयी है । –महात्मा बुद्ध

पुण्यवान के लोकों में कर बहुत समय तक सुखद विहार।
पुनि पवित्र श्रीमानों के घर योगभ्रष्ट[1] लेता अवतार।।४१।।

ज्ञानवान योगी के कुल में जन्म ग्रहण करता अथवा वह।
है किन्तु जगत में अति दुर्लभ संयोग प्राप्त होना ही यह।।४२।।

वहाँ बुद्धि संयोग प्राप्त कर पूर्वजन्म का जो सञ्चित[2]।
पार्थ वहां से आगे करता यत्न सिद्धि के हेतु सुनिश्चित।।४३।।

वहाँ हुआ वह परवश सा ही पूर्वाभ्यास[3] से पुनि खिंचकर।
लंघन कर जाता श्रुतिकृति[4] का फल जो जिज्ञासु[5] भी सत्वर।।४४।।

अभ्यास युक्त करके प्रयत्न वह पाप विकार रहित होकर।
बहुत जन्म के अन्त सिद्ध हो, गति पाता है परम परात्पर।।४५।।

है श्रेष्ट तपस्वी से योगी है शास्त्र ज्ञानियों से उत्तम।
अर्जुन श्रेष्ठ सकामी से योगी होने का करो उपक्रम[6]।।४६।।

सम्पूर्ण योगियों में जिसका लगा हुआ है मुझ में ही मन।
श्रद्धापूर्वक भजता मुझको सर्वोत्तम है वह मेरे मन।।४७।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मसंयमयोग नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ६ ।।

●●

---

१. योग से च्युत, २. इकट्ठा, ३. पहले किये हुए अभ्यास, ४. वेदानुसार किया गया कर्म, ५. जानने की इच्छा वाला, ६. आरम्भ की तैयारी

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

ज्ञानविज्ञानयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।।१।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।२।।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।३।।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।४।।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।५।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।६।।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।७।।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।।८।।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।९।।

● आत्मा को जानने का साधन है, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

सातवाँ अध्याय

ज्ञानविज्ञानयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

सुन जैसे चित्त लगाकर मुझमें योगयुक्त मेरे आश्रित।
हे अर्जुन, जानेगा मुझको, तू सब प्रकार संदेह रहित।।१।।

मैं तुझे ज्ञान विज्ञान सहित बतलाऊँगा सब अशेष।
जिसे जानकर अन्य जानना नहीं बचेगा कुछ भी शेष।।२।।

बहुत मनुष्यों में कोई ही परमसिद्धि[1] हित करता यत्न।
जानता तत्त्व से मुझे पुनः कोई करता हुआ प्रयत्न।।३।।

जो पृथ्वी जल आकाश वायु ये अग्नि बुद्धि मन अहंकार।
इस प्रकार जड़ प्रकृति हमारी कही गई है आठ प्रकार।।४।।

प्रकृति हमारी यह अपरा[2] है इससे अन्य परा[3] को जान।
जो धारण करती सारा जग जीव स्वरूपा उसको मान।।५।।

भूत[4] समूह सकल उत्पादक इन दोनों को ही तू जान।
सभी जगत का आदि अन्त मैं मुझे मूल कारण तू मान।।६।।

है मुझसे भिन्न न कोई कुछ भी कहीं जगत में हे अर्जुन।
मुझमें ही सब गुथा हुआ है जैसे सूत में सूत के मणिगण[5]।।७।।

अर्जुन मैं ही जल में रस हूँ मैं सूर्य चन्द्रमा में प्रकाश।
वेदों में सभी मैं 'ओंकार' नर में पौरुष शब्द आकाश।।८।।

शुचि[6] सुगन्ध पृथ्वी के भीतर अग्नि में उसका तेज महान।
सम्पूर्ण प्राणियों का जीवन तपधारी में तप मुझे जान।।९।।

---

१. मुक्ति, २. जड़, ३. चेतन, ४. जीव, ५. माला के मनके, ६. शुद्ध

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।१०।।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।११।।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।१२।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।१३।।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।१४।।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।१५।।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१६।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।१७।।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।१८।।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।१९।।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।२०।।

• दरिद्रता प्रकट करना दरिद्र होने से अधिक दुखदायी होता है।

—प्रेमचंद

अर्जुन सब भूतों का मुझको आदि सनातन बीज जान।
बुद्धिमान की बुद्धि मुझे मैं तेजस्वी में तेज महान।।१०।।

आसक्ति कामना हीन तथा बलवानों का बल हूँ अर्जुन।
धर्मानुकूल[१] जीवों का मैं काम सदा उनमें ही स्थित सुन।।११।।

जितने सात्विक राजस तामस भाव हैं सब मुझसे ही जान।
पर कभी नहीं मैं उनमें स्थित, मुझमें भी उनको नहीं मान।।१२।।

गुण भावों के कार्यरूप से सारा जग यह होता मोहित।
गुण-अतीत मुझ अविनाशी को नहीं जानता ज्ञानतिरोहित[२]।।१३।।

दिव्य अलौकिक मेरी माया त्रिगुणमयी[३] है यह दुस्तर[४]।
मुझे परायण मुझको भजते, वे जन जाते इसको तर।।१४।।

पापी मूढ़ नराधम हैं जो मुझे न भजते कभी कदाचित।
माया ने जिनका ज्ञान हर लिया ऐसे आसुरभाव समाश्रित[५]।।१५।।

चार भाँति से मुझको भजते पुण्यवान मानव अर्जुन।
कष्टमुक्ति, धनप्राप्ति, ज्ञानहित चौथे वे जो ज्ञानीजन।।१६।।

उनमें ज्ञानी सतत भक्तिरत एकभाव[६] से स्थित है उत्तम।
ज्ञानी सब में प्रिय मुझको हैं वैसे ज्ञानी का मैं प्रियतम।।१७।।

हैं उदार सब ही ज्ञानी तो मेरा ही स्वरूप मेरे मत।
उत्तमगति स्वरूप मुझमें स्थित हुआ सदा मुझमें ही रत।।१८।।

अनेक जन्म के अंत में है, भजता मुझको ज्ञानवान।
जान कि 'यह सब वासुदेव है' उसे महात्मा श्रेष्ठ जान।।१९।।

जिन कामों से ज्ञान हरा, उन काम प्रदाता[७] अन्य देव वश।
भजते उनके नियमों में स्थित अपने स्वभाव से हो परवश।।२०।।

---

१. धर्म के अनुसार, २. ढका हुआ, ३. सत्त्वरजतम स्वभाव वाली, ४. कठिनता से पार होने योग्य, ५. आधीन, ६. अनन्य चित्त, ७. देने वाला

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।। २१ ।।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ।। २२ ।।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।। २३ ।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।। २४ ।।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।। २५ ।।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ।। २६ ।।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ।। २७ ।।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ।। २८ ।।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।। २९ ।।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।। ३० ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

●●

● महाभारत और रामायण में क्या अन्तर है, इसका स्पष्टीकरण देते हुए बताया गया : महाभारत जैसा होता है, रामायण जैसा होना चाहिए ।

—पूज्य श्री रामकिंकर जी महाराज

जो जो जिस जिस देव रूप का करना चाह रहा श्रद्धार्चन[1]।
उसकी मैं उसी देव में ही कर देता श्रद्धा स्थिर स्थापन[2] ।।२१।।

उस श्रद्धा से युक्त हुआ वह उनका ही करता आराधन।
इच्छित भोग वहीं से पाता दिया हुआ मेरा ही वह जन।।२२।।

पर उन अल्प बुद्धिवालों के वे फल सब ही नाशवान।
देवोपासक[3] उनको पाते मुझको मेरे भक्तिवान।।२३।।

बुद्धिहीन, मेरा न जानकर, श्रेष्ठ भाव अव्यय[4] अव्यक्त।
जानते जन्म ले करके मैं, मानव सा ही होता व्यक्त[5] ।।२४।।

छिपा योगमाया से निजको मैं व्यक्त नहीं सबके समक्ष।
अतः मूढ जन जान न पाते अज अविनाशीभाव प्रत्यक्ष।।२५।।

वर्तमान गत-आगत[6] के भी सब जीवों का मुझको ज्ञान।
पार्थ, परन्तु न जग में कोई जो सकता है मुझको जान।।२६।।

सुख दुःखादि मोह के कारण इच्छा द्वेष से जो उत्पन्न।
अर्जुन जग में सारे प्राणी हो रहे सर्वथा मोहमग्न।।२७।।

पुण्य कर्म के फल प्रभाव से जो पापों से हैं वियुक्त[7]।
वे दृढ़ता से भजते मुझको द्वन्द्व मोह से हुए मुक्त।।२८।।

जरा मरण से मुक्ति हेतु जो यत्ननिरत[8] मेरे आश्रित।
परमब्रह्म अध्यात्म सर्वथा सकल कर्म भी उन्हें विदित।।२९।।

साधियज्ञ[9] अधिदैवाधिभूत[10] मुझको लेते अन्त में जान।
वे सदा प्राप्त मुझको होते हैं युक्तचित्त अधिज्ञानवान[11] ।।३०।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानविज्ञानयोग नामक
सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ७ ।।

●●

---

१. श्रद्धापूर्वक पूजन, २. स्थिर, ३. देवताओं को पूजने वाले, ४. अविनाशी, ५. प्रकट, ६. भूत-भविष्य ७. छूटा, ८. प्रयत्नशील, ९. अधियज्ञ के साथ, १०. अधिदैव और अधिभूत जो आगे समझाये गये हैं, ११. इन सब विषयों के ज्ञानी जन

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ अष्टमोऽध्यायः

अक्षरब्रह्मयोग

।। अर्जुन उवाच ।।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ।।१।।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ।।२।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसञ्ज्ञितः ।।३।।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।।४।।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।५।।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।६।।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।७।।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।८।।

● अच्छी दवा, चाहे वह कड़वी ही क्यों न हो, रोग को दूर कर देती है । सहृदयतापूर्ण सलाह, चाहे वह कटु ही क्यों न हो, हमारा पथ-प्रदर्शन करती है । —लुई फिशर

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

आठवाँ अध्याय

अक्षरब्रह्मयोग

।। अर्जुन बोला ।।

कौन ब्रह्म अध्यात्म पुनः क्या कर्म किसे कहते हैं माधव।
अधिभूत तथा अधिदैव किसे कहते हैं वे ज्ञानी मानव।।१।।

इस शरीर में यहाँ कौन अधियज्ञ नाम से स्थित मधुसूदन।
तुमको कैसे अन्तकाल में युक्तचित्त[१] जाने रिपुसूदन।।२।।

।। श्री भगवान बोले ।।

ब्रह्म परम अक्षर, स्वभाव ही जीवात्मा अध्यात्म जान।
प्राणिमात्र का उद्भवकर्ता[२] त्याग, कर्म कहते सुजान।।३।।

अधिभूत विनाशी भाव सभी अधिदैव नाम से प्रथम पुरुष।
इस शरीर में मैं ही अर्जुन, अधियज्ञ नाम से परमपुरुष।।४।।

अन्त काल में स्मरण मुझे जो करके जाता काया तजकर।
वह सर्वथा प्राप्त मुझको ही होता यह जानो निश्चय कर।।५।।

जो जो भाव स्मरण करता नर तजता है निज अन्त कलेवर।
प्राप्त उसी को हो जाता है सदा उसी से भावित[३] होकर।।६।।

इसलिए मुझे सब समय स्मरण करते रह और युद्ध भी कर।
होगा प्राप्त मुझे ही निश्चय तू मन बुद्धि मुझे अर्पित कर।।७।।

मति अनन्य से चिन्तन करता ध्यानाभ्यास[४] निरत[५] होकर।
होता प्राप्त ब्रह्म को अर्जुन, करता जो ध्यान निरन्तर।।८।।

---

१. वश में है जिसके मन, २. जन्म देने वाला, ३. भावना में लीन, ४. ध्यान का अभ्यास, ५. हानि

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।९।।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।१०।।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये ।।११।।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ।।१२।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।१३।।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।।१४।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।।१५।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।१६।।

सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ।।१७।।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके ।।१८।।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।१९।।

● ऐसे व्यक्ति जो कभी गलतियाँ नहीं करते, वही हैं जो कभी कुछ नहीं करते । —विविध

जो सर्वज्ञ अनादि नियन्ता[1] अणुप्रमाण[2] करता धारण।

है जो अचिन्त्य आदित्य-वर्ण[3], अज्ञान परे, कर उसे स्मरण।।९।।

निश्चल मन से भक्तियुक्त जो मरते समय योग के बल।
भ्रूमण्डल में प्राण स्थित कर जाता ब्रह्मधाम अविचल।।१०।।

वेदज्ञ[4] जिसे कहते अक्षर करते प्रवेश आसक्तिरहित।
ब्रह्मचर्य जिसके हित वांछित[5] वह पद कहूँगा मैं संक्षिप्त।।११।।

इन्द्रिय द्वारों को रोक सकल चित्त स्थिर कर हृदय प्रदेश।
योगधारणा में स्थित होकर प्राणों को मस्तक निवेश[6]।।१२।।

'ओंकार' ब्रह्म एकाक्षर का स्मरण मुझे करते उच्चारण।
करके देह त्याग जो जाता निश्चय करता वह ब्रह्मवरण[7]।।१३।।

सतत अनन्य चित्त होकर मेरा करता जो नित्य स्मरण।
मुझमें ही नित्य लगे योगी को होता मेरा सुलभ वरण[8]।।१४।।

मुझे प्राप्त कर पुनर्जन्म को जो अनित्य अति दुख का घर।
हैं पाते नहीं महात्माजन पुनि, परम सिद्धि को पाकर।।१५।।

पुनरावर्ती[9] हैं अर्जुन ये ब्रह्मधाम तक सभी लोक।
मुझे प्राप्त कर पुनर्जन्म को प्राप्त न कर, होता विशोक।।१६।।

है एक सहस्र महायुग का ब्रह्मलोक का एक दिवस।
पुनि सहस्र युग रात की जाने वही जानता रात्रि दिवस।।१७।।

ब्रह्मा के इस दिन प्रवेश में सब अव्यक्त से होते व्यक्त।
पुनः रात्रि आरम्भ काल में उसी में लीन हुये अव्यक्त।।१८।।

जीव समूह सभी ये अर्जुन हो होकर होते पुनि लीन।
दिन आने पर प्रगट सभी ये, पुनि आने पर रात्रि प्रलीन।।१९।।

---

१. शासक, २. अति सूक्ष्म, ३. सूर्य समान, ४. वेद जाननेवाले, ५. इच्छित, ६. प्रवेश, ७. ब्रह्म को प्राप्त, ८. प्राप्त होना, ९. पुनः पुनः होने वाले

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।२०।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।२१।।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।।२२।।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ।।२३।।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ।।२४।।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ।।२५।।

शुक्लकृष्णो गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिम् अन्ययावर्तते पुनः ।।२६।।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।।२७।।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ।।२८।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां अक्षरब्रह्मयोगो नाम
अष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

●●

• बूढ़े से मत पूछो, पूछना हो तो अनुभवी से पूछो ।

—रूसी कहावत

अव्यक्त परात्पर इससे भी अन्य भाव है परम पुरातन।

होते नष्ट सभी प्राणी के भी रहता जो शेष सनातन।।२०।।

वह अव्यक्त परम अक्षर है, कहते उसको ही सुगति परम।
जिसे प्राप्त कर नहीं लौटता है वही हमारा धाम परम।।२१।।

अर्जुन वह परम पुरुष केवल, अनन्य भक्ति से होता प्राप्त।
जिसके अन्तर्गत जीव सभी, जो है सबमें सर्वत्र व्याप्त[1]।।२२।।

जिस काल में जाकर नहीं लौटते पुनि इस लोक में अर्जुन।
कहूँगा वह जिस काल में जाकर पुनः लौटते योगी सुन।।२३।।

अग्नि ज्योति दिन शुक्ल पक्ष जो सौम्यायन[2] के हैं छमास।
उसमें जाता ब्रह्मज्ञ सदा ब्रह्मधाम में विगत त्रास।।२४।।

धूमरात्रि पुनि कृष्णपक्ष जो याम्यायन[3] के हैं छ मास।
योगी पाकर चन्द्रज्योतिपद[4] पुनः लौटता हो निराश।।२५।।

शुक्ल कृष्ण ये दोनों गतियाँ कही गईं सर्वथा सनातन।
आते नहीं एक से जाकर तथा अन्य से पुनि आवर्तन।।२६।।

अर्जुन, गति ये द्विविध[5] जानकर योगी कभी न होता मोहित।
पार्थ इसलिये तू भी होजा नित्य सब समय योग समर्पित[6]।।२७।।

वेद यज्ञ तप दान किये से जो फल उसका लंघन कर।
करता प्राप्त परमपद योगी, इसको सब भाँति समझ कर।।२८।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में अक्षरब्रह्मयोग
नामक आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ८ ।।

●●

---

१. फैला हुआ, २. मकर से मिथुन राशि तक, ३. कर्क से धनुराशि तक, ४. स्वर्गादि लोक, ५. दो प्रकार की, ६. शरण में प्राप्त

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ नवमोऽध्यायः

राजविद्याराजगुह्ययोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।। १ ।।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।। २ ।।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।। ३ ।।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।। ४ ।।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।। ५ ।।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।। ६ ।।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।। ७ ।।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।। ८ ।।

● केवल दो ही मनुष्य सम्पूर्ण रूप से भले हैं, एक वह जो मर चुका है, और दूसरा वह जो कभी पैदा नहीं हुआ है। —एक चीनी कहावत

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

नौवाँ अध्याय

राजविद्याराजगुह्ययोग

।। श्री भगवान बोले ।।

दोष दृष्टि से रहित तुझे मैं कहता हूँ यह गोप्य परम[1] ।
विज्ञान ज्ञान के सहित जान जो लांघेगा अशुभ परम ।।१।।

सब गोप्यराज[2] विद्याधिराज[3] यह ज्ञान पवित्र और उत्तम ।
धर्मयुक्त प्रत्यक्ष फलप्रद अविनाशी[4] सर्वदा सुलभतम ।।२।।

इस धर्म में श्रद्धा नहीं है जिसकी वे मनुष्य हे अर्जुन ।
मुझे न पाकर पुनः लौटते मृत्युलोक पथ में ही सुन ।।३।।

मुझ निराकार परमात्मा से यह व्याप्त हो रहा पूर्ण जगत ।
हैं जीव सभी मेरे अन्तर्गत मैं न किसी के अन्तर्गत[5] ।।४।।

देख तू योगैश्वर्य[6] को मेरे, न तो जीव ये मुझमें स्थित ।
होकर धारक कारक सबका मैं भी उनमें नहीं उपस्थित ।।५।।

पवन सर्वत्र विचरने वाला जैसे रहता आकाश-स्थित ।
संकल्प हमारे सभी जीव ये वैसे ही मुझमें भी स्थित ।।६।।

कल्प-अन्त[7] में सभी जीव ये होते मेरी प्रकृति में लीन ।
कल्प-आदि में पुनः पार्थ मैं रचता उनको आसक्तिहीन ।।७।।

रचता उनको बार-बार मैं अपनी प्रकृति को कर आधीन ।
जीव समूह सकल इन सबको जो स्वभाव से पराधीन ।।८।।

---

१. अत्यन्त गोपनीय, २. गोपनीयों का राजा, ३. सभी विद्याओं में श्रेष्ठ, ४. अक्षय, ५. भीतर, ६. योग का प्रभाव, ७. १००० बार चारों युग बीतने का समय

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।।९।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।१०।।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।११।।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।१२।।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।१३।।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ।।१४।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।१५।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।।१६।।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ।।१७।।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।।१८।।

● वह मनुष्य जो किसी सहायता के दोनों पहलुओं पर विचार नहीं करता, बेईमान है ।

—लिंकन

मुझको ये सारे सृजनकार्य[1] कर सकते कभी नहीं बन्धन।
आसक्तिहीन मैं उदासीन कर्मों को करता हूँ अर्जुन।।९।।

संरक्षित[2], मेरे सकाश में रचती प्रकृति विश्व सचराचर[3]।
इसी भाँति संसारचक्र यह चलता अर्जुन यहाँ बराबर।।१०।।

मानव तनुधारी मुझको वे तुच्छ जानते अज्ञानी नर।
सब भूतों के ईश्वर मुझको, परमभाव मेरा न जान कर।।११।।

वे व्यर्थआश वे व्यर्थकर्म वे व्यर्थज्ञान मोहितमानस[4]।
होते जो प्रकृति राक्षसी के, आसुरी, मोहिनी से परवश।।१२।।

दैवी प्रकृति समाश्रित[2] अर्जुन भजते मुझको ज्ञानी जन।
हो अनन्यमन, मान मुझे अविनाशी सबका कारण।।१३।।

सतत हमारा कीर्तन करते दृढ़ निश्चय से करते यत्न।
नमस्कार कर श्रद्धापूर्वक अर्चन करते मुझमें मग्न।।१४।।

ऐक्यभाव[6] से ज्ञान-यज्ञ से ज्ञानी करते मेरा अर्चन।
पृथक् भाव से विश्वरूप का, मेरे करते हैं अन्य सुजन।।१५।।

मैं श्रौतकर्म[7] मैं यज्ञ स्वधा, औषध घृत सब मुझको जान।
मन्त्र भी मैं हूँ अग्नि भी मैं, घृतआहुति भी मुझको मान।।१६।।

माता पिता पितामह सब का धाता भी मुझको ही जान।
मैं ओंकार हूँ, ज्ञेय भी मैं, यजुः साम ऋग्वेद महान।।१७।।

गति भर्ता[8] स्वामी साक्षी मैं सबका सुहृद मैं वासस्थान।
उत्पत्ति प्रलय का हेतु, शरण, अविनाशी मैं बीज निदान[9]।।१८।।

---

१. रचना सम्बन्धी कार्य, २. आधीन, ३. जड़ चेतन सहित, ४. मूढ़चित्त, ५. उपासना, ६. अद्वैत भावना, ७. वेदोक्तकर्म, ८. भरण-पोषण करने वाला, ९. कारण

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।।१९।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।२०।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ।।२१।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।२२।।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।२३।।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।।२४।।

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।२५।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।२६।।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।२७।।

● प्रत्येक मनुष्य को जीवन में केवल एक बार अपने भाग्य की परीक्षा का अवसर मिलता है, और वही भविष्य का निर्णय कर देता है। —प्रेमचन्द

मैं ही सूर्य रूप से तपता, करता वर्षा का आकर्षण।
बरसाता, अमृत मृत्यु स्वयं, सत् असत् उभय मैं ही अर्जुन।।१९।।

अघरहित सोमरसग्राही[1] वे इन यज्ञों से मुझे पूजकर।
स्वर्गलोक के दिव्यभोग फल पाते पुण्य महान प्राप्त कर।।२०।।

भोग स्वर्गसुख क्षीणपुण्य वे मृत्यु लोक में इस प्रकार।
आते जाते वैदिक सकाम-निष्ठा वाले जन बारबार।।२१।।

करते उपासना जो मेरी जिनका मुझमें ही परम प्रेम।
उन नित्य युक्त भक्तों को मैं ही प्राप्त कराता योगक्षेम[2]।।२२।।

अन्य सुरगणों का भी पूजन करते होकर जो श्रद्धान्वित।
वे मेरा ही पूजन करते किन्तु पूजते विधि से विरहित[3]।।२३।।

मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता, मैं ही सबका स्वामी एक।
मुझे तत्व से नहीं जानते वे पुनि गिरते बार अनेक।।२४।।

देवोपासक[4] देवलोक को पितरों को जो उनमें अनुरत[5]।
भूतोपासक[6] भूतों को ही, मुझको मेरी उपासनारत।।२५।।

पत्र-पुष्प फल वारि प्रेम से जो करता है मुझे समर्पित।
मैं खाता हूँ प्रीति सहित जो भक्त भक्ति से करता अर्पित।।२६।।

तुम कर्म करो या अशनग्रहण[7], जो दान करो या करो हवन।
अर्जुन जो तप तपते हो तुम करो प्रेम से मुझे समर्पण।।२७।।

---

१. दिव्य यज्ञ करने वाले २. जुटाना तथा रक्षा करना, ३. छोड़कर, ४. देवपूजक, ५. लगे हुये ६. भूत पूजक ७. अन्न भोजन

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ।। २८ ।।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।। २९ ।।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।। ३० ।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।। ३१ ।।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।। ३२ ।।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ।। ३३ ।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।। ३४ ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

●●

● चालाकी द्वारा कभी कोई बड़ा काम नहीं होता। –स्वामी विवेकानन्द

अशुभ और शुभ कर्मों का फल त्याग कटेगा तेरा बन्धन।
फलत्याग रूप संन्यास युक्त, हो मुक्त, करोगे मुझे वरण।।२८।।

प्रिय अप्रिय मुझको नहिं कोई, सभी में मैं समभाव से स्थित।
भावभक्ति से जो भजता है, मुझ में है वह मैं उसमें स्थित।।२९।।

यदि दुराचार में भी रत था पर भजता मुझे अनन्यचित्त।
वह साधु मानने योग्य हुआ प्रज्ञा उसकी पूर्ण व्यवस्थित[1] ।।३०।।

अचिरकाल[2] होता धर्मात्मा, शीघ्र शाश्वती शांति स्पष्ट।
पार्थ प्रतिज्ञा है मेरी यह, होता भक्त न कभी नष्ट।।३१।।

पापयोनि में जन्म प्राप्त भी, करके मेरी शरण ग्रहण।
वे शूद्र वैश्य स्त्री आदिक भी, कर लेते हैं मुक्ति वरण।।३२।।

तो पुण्यवान पुनि विप्र न क्यों, वे मेरे राजर्षि भक्तगण।
है अनित्य सुखहीन लोक यह, पाकर तुम मेरा करो भजन।।३३।।

हो जा भक्त लगा मन मुझमें मुझको प्रणाम कर, पूजन कर।
होगा निश्चित ही प्राप्त मुझे परमात्मा में मन को स्थिर कर।।३४।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में राजविद्याराजगुह्ययोग
नामक नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ९ ।।

●●

---

१. स्थिर, २. शीघ्र

अथ दशमोऽध्यायः

विभूतियोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।।१।।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ।।२।।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३।।

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ।।४।।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।।५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।६।।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।८।।

• अपनी भूल अपने ही हाथों सुधर जाय तो यह उससे कहीं अच्छा है कि कोई दूसरा उसे सुधारे। —प्रेमचन्द

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

दसवाँ अध्याय

विभूतियोग

।। श्री भगवान बोले ।।

परम गोप्य यह अति प्रभावमय, वाणी मेरी पुनः इसे सुन।
जान परम प्रेमी तेरे हित जिसे कहूँगा मैं अब अर्जुन।।१।।

नहीं देवगण या महर्षिजन, उद्भव मेरा सके जान।
सुरगण और महाऋषियों का कारण भी तू मुझे मान।।२।।

अज[1] अनादि सब लोक महेश्वर लेता मुझे ही जो जन जान।
होता पापों से विमुक्त, वह, सब लोगों में ज्ञानवान।।३।।

क्षमा सत्य इन्द्रियनिग्रह दम[2] प्रज्ञा असम्मूढ़ता[3] शम[4]।
उत्पत्ति प्रलय सुख-दुःख अभय, भय भी यह सब निश्चिततम।।४।।

समता और अहिंसा अपयश, यश संतोष और तप दान।
सब प्रकार के जीव भाव ये मुझसे ही सम्भव तू जान।।५।।

सात महर्षि चार सनकादिक चौदह मनु मानस सम्भव।
जिनके द्वारा सकल सृष्टि के सभी प्राणियों का उद्भव[5]।।६।।

यह विभूतिमय[6] योगशक्ति जो मेरी तत्त्व से लेता जान।
अविचल योगयुक्त हो जाता इसमें तू संशय मत मान।।७।।

मैं ही सबका आदि जनक[7] हूँ, जग मुझ से ही है चेष्टारत।
यही जानकर ज्ञानीजन हैं भजते मुझको भक्ति-भाव रत।।८।।

---

१. अजन्मा, २. जीतना, ३. विवेक, ४. शमन, ५. जन्म, ६. ऐश्वर्य वाली, ७. पिता

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।९।।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।१०।।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।११।।

।। अर्जुन उवाच ।।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।१२।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।।१३।।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।।१४।।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ।।१५।।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।।१६।।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।१७।।

● प्रसिद्धि श्वेत वस्त्र के सदृश है, जिस पर एक धब्बा भी नहीं छिप सकता ।
—प्रेमचन्द

चित्त प्राण कर मुझमें अर्पण आपस में करते मुझे स्मरण।
कीर्तन कर संतुष्ट सतत वे, करते हैं मुझ में नित्यरमण[1] ।।९।।

लगे हुये सर्वदा मुझी में प्रेम से भजते मुझे निरन्तर।
ज्ञान से युक्त कराता उनको जिससे लेते मुझे प्राप्तकर।।१०।।

कृपादृष्टि से उनके भीतर, जो अन्धकार अज्ञानजनित[2]।
ज्ञानदीप से कर प्रकाश मैं, मिटा दिया करता अंतःस्थित[3] ।।११।।

।। अर्जुन बोला ।।

परम ब्रह्म हैं परम धाम हैं परम पवित्र हैं आप महान।
पुरुष सनातन आदि देव अज, दिव्य हैं व्यापक विश्वनिधान[4] ।।१२।।

ऐसा ही देवर्षि आपको नारदादि कहते सब ऋषिगण।
स्वयं आप कहते वैसा ही असित व्यास परमर्षि देवगण।।१३।।

मैं सत्य मानता सारपूर्ण[5] है, जो कुछ कहते हैं माधव।
जानते आपके दिव्यरूप को, न तो देव अथवा दानव।।१४।।

हे भूतोत्पादक[6] पुरुषोत्तम! जीवों के स्वामी देवदेव।
जग के स्वामी आप, आपको, मात्र जानते हैं स्वयमेव[7] ।।१५।।

दिव्य विभूति स्वयं अपनी कह सकते केवल आप अशेष।
व्याप्त विश्व को करके स्थित हैं जिन विभूतियों से सर्वेश।।१६।।

जानूँ कैसे उन्हें आपका मैं चिन्तन करते सर्वेश्वर।
मेरे द्वारा किनकिन भावों से चिन्त्य[8] आप हैं योगेश्वर।।१७।।

---

१. सर्वदा विहार, २. अज्ञान से उपजा, ३. उपस्थित, ४. जिसमें सारा संसार हो, ५. तत्त्व से परे, ६. जीवों के जन्मदाता, ७. आप ही, ८. चिन्तन करने योग्य

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।।१८।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।।१९।।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।।२०।।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।।२१।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ।।२२।।

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।।२३।।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ।।२४।।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ।।२५।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।२६।।

● संसार में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का सरल और निश्चित उपाय यही है कि मनुष्य वास्तव में जैसा है, वैसा ही अपने को व्यक्त करे। —सुकरात

पुनः कहें विस्तृत विभूतियाँ आत्मयोग निज मधुसूदन।
तृप्त नहीं हो रहा श्रवणकर मैं अमृतमय आप्तवचन[१] ।।१८।।

।। श्री भगवान बोले ।।

अंतहीन विस्तार हमारा, प्रधानता से ही अर्जुन।
करता वर्णन निज विभूति का, हैं जो दिव्य उन्हें तू सुन।।१९।।

सब भूतों में स्थित मैं ही हूँ, आत्मा सबका मैं गुडाकेश।
मैं ही हूँ आदि मध्य सबका, पुनि अन्त तथा मैं ही अशेष[२] ।।२०।।

अदिति पुत्रों में विष्णु हूँ मैं, सभी ज्योति में सूर्य किरणधर[३] ।
वायु देवता में मरीचि मैं सब नक्षत्र में शशि अमृतकर[४] ।।२१।।

वेदों में मैं सामवेद हूँ देवों में मुझको इन्द्र मान।
हूँ सभी इन्द्रियों में मैं मन, चेतना सभी जीव में जान।।२२।।

मैं एकादश रुद्रों में शंकर मैं यक्ष-राक्षसों में कुबेर।
वसुओं में मैं हूँ अग्निदेव, हूँ नगराजों[५] में मैं सुमेर।।२३।।

पुरोहितों में सबका मुखिया मैं सुरगुरु[६] हूँ जानो अर्जुन।
कार्तिकेय सेनापतियों में जलाशयों में मैं सागर सुन।।२४।।

महर्षियों में भृगुमुनि हूँ मैं, वाणी में सभी हूँ ओंकार।
जप यज्ञ सभी यज्ञों में हूँ, मैं सब अचलों में हिमागार।।२५।।

सब वृक्षों में पीपल हूँ मैं सुरर्षियों में हूँ नारद।
हूँ गन्धर्वों में सभी चित्ररथ, सिद्धों में मुनि कपिल विशारद।।२६।।

---

१. परमेश्वर की वाणी, २. सब कुछ, ३. किरणों को धारण करने वाला, ४. अमृत प्रदान करने वाली किरणों वाला, ५. श्रेष्ठ पर्वतों, ६. बृहस्पति

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।२७।।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।।२८।।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।२९।।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।३०।।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।३१।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।३२।।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।३३।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।३५।।

● धमकी देने वाला सदा कायर होता है। शक्तिमान पुरुष कभी धमकी नहीं देता, वह तो जो चाहता है, करके दिखा देता है।

—बर्नार्ड शा

अश्वों में मैं अमृतसहोदर[1] उच्चैःश्रवा मुझे ही जान।
सब गजराजों में ऐरावत नरों में मैं राजा महान।।२७।।

हूँ सब अस्त्रों में वज्र और मैं कामधेनु गौ में महान।
मैं कामदेव सन्तान हेतु, सर्पों में वासुकि मुझे जान।।२८।।

नागों में मैं हूँ शेषनाग, जलचरवृन्दों[2] में वरुण मान।
पितरों में अर्यमा पितृपति[3], शासकगण में यम मुझे जान।।२९।।

दैत्यों में मैं प्रह्लाद भक्त हूँ गणकों[4] में मैं कालज्ञेय[5]।
पशुओं में हूँ मृगराज सिंह, पक्षी गण में मैं वैनतेय[6]।।३०।।

बहने वालों में जान पवन, शस्त्रधारियों में मैं राम।
मत्स्यों[7] में मैं मकर प्रबल हूँ, सरिताओं में सुरसरि नाम।।३१।।

मैं सब सर्गों[8] का आदि अन्त, मध्य भी मैं ही सबका पार्थ।
सब विद्याओं में आत्मबोध, विवादियों का वाद यथार्थ।।३२।।

मैं सभी अक्षरों में अकार, समासों में मैं ही हूँ द्वन्द्व।
अक्षय काल विराटरूप हूँ, धाता[9] सभी का मैं निर्द्वन्द्व।।३३।।

सबका नाशक मृत्यु तथा मैं, सब होने वालों का उद्भव।
कीर्ति श्री वाक् स्मृति मेधा मैं, क्षमा तथा धृति नारीसम्भव[10]।।३४।।

गायन श्रुतियों में वृहत्साम, छन्द में मैं गायत्री छन्द।
मासों में हूँ मैं मार्गशीर्ष, ऋतुओं में ऋतुराजबसन्त।।३५।।

---

१. अमृत के साथ उत्पन्न, २. जलजीव समूह, ३. पितरों का राजा, ४. ज्योतिषियों, ५. जानने योग्य, ६. गरुड़, ७. मछलियों, ८. एक सृष्टि का पूरा समय, ९. जन्म देने वाला तथा धारक, १०. स्त्री वाचक

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।।३६।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।३७।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।३८।।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।३९।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।।४०।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।४१।।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां विभूतियोगो
नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

●●

● कर्ज लेना भिक्षावृत्ति के समान है । —भारत

छलनाओं में जूआ हूँ मैं, तेजस्वी का तेज प्रभाव।
हूँ मैं ही जय निश्चय भी मैं, सतोगुणी में सात्विक भाव।।३६।।

मैं वृष्णिवंश में वासुदेव हूँ पाण्डवों में अर्जुन मैं आर्य।
मुनियों में हूँ मैं वेदव्यास, कविवृन्दों में मैं शुक्राचार्य।।३७।।

दण्ड दमन करने वालों का नीति विजेता[५] का निदान[६]।
मौन गोप्य[७] का रक्षक मैं हूँ, ज्ञानी का मैं तत्त्वज्ञान।।३८।।

सब भूतों का उत्पत्ति हेतु मुझको ही जानो तुम अर्जुन।
वस्तु चराचर सहित, रहित जो, मुझसे नहीं जगत में है सुन।।३९।।

न दिव्य विभूतियों का मेरे है अन्त कहीं सम्भव अर्जुन।
ये मेरे द्वारा कही गईं थोड़े में जिन्हें रहा तू सुन।।४०।।

सत्त्व, विभूति युक्त हैं जो जो कान्ति शक्तिमय जिनका उद्भव।
उन उनको तुम जानो मेरे तेज अंश से ही हैं सम्भव।।४१।।

अथवा बहुत जानने से क्या, अर्जुन होगा तेरा हित।
योगशक्ति के एक अंश में, जग को धारणकर मैं स्थित।।४२।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में विभूतियोग
नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १० ।।

●●

---

५. जीतने वाला ६. कारण ७. गुप्त रखने योग्य

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ एकादशोऽध्यायः

विश्वरूपदर्शनयोग

।। अर्जुन उवाच ।।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।।१।।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।।२।।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।३।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।।४।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ।।५।।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्था ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।६।।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ।।७।।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।।८।।

● संकट में ही धैर्य और धर्म की परीक्षा होती है । —प्रेमचन्द

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

ग्यारहवाँ अध्याय

विश्वरूपदर्शनयोग

।। अर्जुन बोला ।।

जो गोपनीय यह परम ज्ञानमय कहे आप अध्यात्म वचन।
करने हेतु अनुग्रह[1] मुझ पर, सब मोह हमारा हुआ शमन।।१।।

इन भूतों की उत्पत्ति आपसे प्रलय सुविस्तृत[2] कमलनयन।
सुनी महा महिमा अविनाशी मोहविगत[3] अब मैं प्रसन्न मन।।२।।

जैसा कहे आप अपने को वह वैसा ही है परमेश्वर।
रूप आपके ईश्वरीय का चाह रहा दर्शन सर्वेश्वर।।३।।

यदि आप मानते मुझसे है देखा जाना उसका सम्भव।
तो उसी रूप अविनाशी का अब दर्शन दें मुझको माधव।।४।।

।। श्री भगवान बोले ।।

दिव्य सहस्रों शतरूपों को मेरे अब तू अर्जुन निहार।
नाना आकृति नाना वर्णों के रूपों को तू सब प्रकार।।५।।

मुझमें सब आदित्य रुद्र वसु पवन ये दो अश्विनी कुमार।
आश्चर्य जनक जो अन्यरूप देखा न प्रथम, उनको निहार।।६।।

देह में मेरे एकत्र स्थित तू देख चराचर जग अशेष।
अन्य देखने की जो इच्छा वह सभी देख तू गुडाकेश[4]।।७।।

इन अपने प्राकृत नेत्रों से मुझे देखने में न समर्थ।
मेरी योगशक्ति तू देखे, दिव्य नेत्र देता इस अर्थ।।८।।

---

१. दया, २. विस्तार से, ३. मोहरहित, ४. अर्जुन

।। सञ्जय उवाच ।।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ।।९।।

अनेकवक्त्रनयनम् अनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।१०।।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवम् अनन्तं विश्वतोमुखम् ।।११।।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भा सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।।१२।।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।।१३।।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ।।१४।।

।। अर्जुन उवाच ।।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।।१५।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।१६।।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।।१७।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।।१८।।

• मनुष्य भावों और विचारों का पुतला है। जब भावों और विचारों में परिवर्तन आ गया हो तो वह व्यक्ति पहला व्यक्ति ही नहीं रहता।

—यशपाल

।। सञ्जय बोले ।।

हे राजन ऐसा कह कर, पुनि योगेश्वर श्री हृषीकेश।
अर्जुन को दिख लाये अपना वह विराट वपु[1] निज विशेष।।९।।

वक्त्र[2] अनेक अनेक नेत्रयुत अद्भुत अनेक दर्शनमय।
अति दिव्य अनेक शस्त्र कर में सब लिये हुये शोभामय।।१०।।

दिव्य वस्त्र मालायुत शोभित दिव्यगंध से अनुलेपित[3]।
वे सर्वाश्चर्य[4] अनन्तरूप वपु हरि, विराट, परिसेवित[5]।।११।।

सूर्य सहस्त्र साथ नभ में हो उदय हुये से जो प्रकाश।
सरिस कदाचित विश्वात्मा के हो सके उसका आभास।।१२।।

इस अलग अलग सम्पूर्ण जगत को एकस्थान पर ही सब स्थित।
देखा अर्जुन ने देवदेव के ही शरीर में उनको स्थित।।१३।।

आश्चर्य चकित पुलकित शरीर होकर श्रद्धानत[6] अर्जुन।
शिर से प्रणाम कर बोला वह, इस प्रकार कर जोड़ वचन।।१४।।

।। अर्जुन बोला ।।

देख रहा हूँ देव देह में आपके अखिल भूत समुदाय।
पद्मासन पर विधि शंकर को दिव्य सर्पगण ऋषि निकाय[7]।।१५।।

बहुत नेत्र मुख उदर अपरिमित[8] सभी ओर से रूप अनन्त।
विश्वरूप मैं नहीं देखता इसका आदि मध्य या अन्त।।१६।।

गदाचक्रधर, मुकुट शीश, सब ओर तेजमय आप प्रदीप्त[9]।
देखता आपको दुर्निरीक्ष्य[10] द्युति[11] सूर्य अग्नि सम सर्वदीप्त।।१७।।

परमब्रह्म हैं, आप ज्ञेय हैं सकल सृष्टि के हैं प्रभु आश्रय।
रक्षक-धर्म, नित्य अविनाशी पुरुष सनातन मेरा निश्चय।।१८।।

---

१. शरीर, २. मुँह, ३. लेप किये, ४. सभी आश्चर्यों से पूर्ण, ५. सभी से सेवा किये जाते हुए, ६. श्रद्धा से झुका हुआ, ७. समूह, ८. असंख्य, ९. प्रभायुक्त, १०. जिसे देखा जाना ही कठिन हो, ११. प्रकाश

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ।।१९।।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ।।२०।।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ।।२१।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ।।२२।।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।।२३।।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ।।२४।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।२५।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ।।२६।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ।।२७।।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ।।२८।।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ।।२९।।

- जो जीवन में कुछ नहीं कर पाते, वे आलोचक बन जाते हैं ।

—अज्ञात

आदि न अन्त न मध्य आपका, कर अनन्त रविचन्द्रनयन।
अग्निरूप मुख ज्वलित आपका देख रहा हूँ विश्वदहन[1] ।।१९।।

इस धरा[2] स्वर्ग के बीच आप ही सभी दिशा में एक व्याप्त।
देख रूप यह अद्‌भुत भयकर तीनों लोक भीति से व्याप्त।।२०।।

करते प्रवेश सुरसंघ आप में कुछ हाथ जोड़ भयभीत विनय।
सिद्ध महर्षि समूह 'स्वस्ति' कह करते दिव्य स्तुति से अनुनय।।२१।।

आदित्य रुद्र वसु अश्विनिसुत[3] पितृ[4] वे विश्वे[5] साध्य मरुद्गण।
देखते आपको हो विस्मित, यक्ष असुर गन्धर्व सिद्धगण।।२२।।

हे महाबाहु, बहुबाहु जांघ मुख नेत्र चरण बहु उदर सहित।
बहु दाढ़ों से विकराल रूप मैं देख जगत के साथ व्यथित।।२३।।

नभस्पर्शी[6] दीप्त अनेकवर्ण प्रसरितमुख[7] दीप्तविशाल नयन।
देख आपको व्यथित हो रहा धैर्य शान्ति सबगत मधुसूदन।।२४।।

देख आपके दाढ़ों से मुखविकट खुले कालाग्नि समान।
मैं दिशाज्ञानहत[8] शांतिरहित प्रभु प्रसन्न हों दयानिधान।।२५।।

धृतराष्ट्र सुवन वे सभी स्वयं मुख में राजाओं के साथ।
भीष्म द्रोण ये कर्ण, हमारे सभी प्रमुख वीरों के साथ।।२६।।

विकराल दाढ़युत अति भयकर मुख में घुसते हैं वे सत्वर।
चूर्ण हुये शिर सहित कई हैं दीख रहे दांतो के भीतर।।२७।।

जैसे नदियों के जलप्रवाह, भागा करते सिन्धु की ओर।
वैसे ही नरलोक बीर ये, आप के जलते मुख की ओर।।२८।।

दीप्त अग्नि में यथा पतंगे मरने हित ही गिरते सत्वर।
लोग आपके मुख में भी सब मरने जाते तीव्र वेगधर।।२९।।

---

१. संसार को नष्ट करने वाले, २. पृथिवी, ३. अश्विनी कुमार, ४. पितरगण,
५. विश्वेदेवा, ६. अति ऊंचा, ७. फैला हुआ मुँह, ८. दिशाओं को न समझ पाना

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ।।३०।।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ।।३१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ।।३२।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।३३।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।३४।।

।। सञ्जय उवाच ।।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।।३५।।

।। अर्जुन उवाच ।।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ।।३६।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ।।३७।।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ।।३८।।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।३९।।

● दरिद्रता आलस्य का प्रतिफल है।

–डच कहावत

ज्वलित[१] मुखों से सभी लोक को चाट रहे कर इसे ग्रास।
तपा रहा सब जगत तेज से देव, आपका उग्र भास।।३०।।

इस उग्ररूप से कौन आप यह कहें मुझे होवें प्रसन्न।
जानना चाहता कौन आप हैं सब के आदि यहाँ प्रपन्न।।३१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

मैं प्रवृत्त[२] हूँ लोकनाशहित बढ़ा हुआ मैं महाकाल अब।
बिना तुम्हारे भी न रहेंगे योद्धा जो विपक्ष[३] में स्थित सब।।३२।।

इस हेतु उठो यश लो अर्जुन करो भोग अरि जीत राज्य धन।
ये पूर्व निहत मेरे द्वारा केवल निमित्त बन जा अर्जुन।।३३।।

कर्ण जयद्रथ भीष्म द्रोण ये मेरे द्वारा हत सब वीर।
तू व्यथित न हो अब मार इन्हें, शत्रुजयी होगा धर धीर।।३४।।

।। सञ्जय बोले ।।

यह सुन पार्थ वचन केशव का कम्पित शरीर कर जोड़ उभय।
भय से प्रणाम, कर नमस्कार, गद्गद् हरि से बोला सविनय।।३५।।

।। अर्जुन बोला ।।

हृषीकेश यह उचित आपका कीर्तन कर जग हर्षित रञ्जित[४]।
राक्षस भय से द्रवित[५] चतुर्दिश[६], है सिद्ध संघ सब ओर नमित।।३६।।

कर्ता आप आदि विधि के भी पुनः आपको क्यों न नमन।
जग निवास देवेश्वर अनन्त सदसत् परे आप भगवन्।।३७।।

आदि देव हैं पुरुष पुरातन आप विश्व के परमनिधान[७]।
परमधाम हैं सबके वेत्ता, विश्व आपसे व्याप्त महान।।३८।।

वायु अग्नि यम वरुण चन्द्रमा हे प्रपितामह, प्रजाधार[८]।
बार हजार है नमस्कार प्रभु नमस्कार पुनि बार-बार।।३९।।

---

१. जलते हुए, २. लगा हुआ, ३. वैरियों की ओर, ४. प्रसन्न, ५. भाग रहे, ६. चारो ओर, ७. जिसमें विश्व समाया हो, ८. प्रजा को धारण करने वाला

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ।।४०।।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ।।४१।।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।।४२।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।४३।।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।४४।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।४५।।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।।४६।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ।।४७।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ।।४८।।

● मूर्ख स्वयं को बुद्धिमान समझते हैं, किन्तु वास्तविक बुद्धिमान स्वयं को मूर्ख ही समझते हैं। —शेक्सपीयर

आगे पीछे से नमस्कार सब ओर नमस्ते तुम्हें सर्व।

वीर्य अनन्त अमित विक्रम बल, हैं सभी व्याप्तकर आप सर्व ।।४०।।

मित्र मानकर कहा प्रेम से, मैंने जो कृष्ण सखा यादव।
अज्ञात आपकी महिमा से केवल प्रेम हँसी में माधव ।।४१।।

मुझसे विनोदवश जो विहार शय्याशन[1] में हुये असत्कृत[2]।
अकेले सभी के आगे या, मैं क्षमा कराता हूँ वह सकृत[3] ।।४२।।

विश्व चराचर जनक[4] आप ही सर्वश्रेष्ठ जग पूज्य भाव।
तीन लोक में सम न कहीं पुनि अधिक कौन अनुपम प्रभाव ।।४३।।

हो नम्रकाय[5] करता प्रणाम प्रभु प्रसन्न होवें मधुसूदन।
पिता पुत्र, पत्नी को पति जिमि, मित्र-मित्र को कर मुझे सहन ।।४४।।

रूप देख यह प्रथम न देखा भय से परम व्यथित मैं तन मन।
उस देवरूप से दर्शन दें होवें प्रसन्न अब जगवन्दन ।।४५।।

चाह रहा लखना आपको गदा चक्र कर शीशमुकुट।
हे सहस्रकर[6] विश्वरूप! हों उसी चतुर्भुज रूप प्रगट ।।४६।।

।। श्री भगवान बोले ।।

करुणा कर दिखलाया मैंने निज योगशक्ति से रूपधन्य।
आदि अनन्त विराट तेजमय देखा तुमसे पहले न अन्य ।।४७।।

वेदाध्ययन[7] न यज्ञ दान से या नहीं क्रिया तपसे अपार।
अर्जुन, शक्य। बिना तुम्हारे जग, रूप देखना इस प्रकार ।।४८।।

---

१. शय्या और भजन, २. सत्कार रहित, ३. सब प्रकार, ४. जन्म देने वाले,
५. शरीर को झुकाकर, ६. हजारों हाथों वाले, ७. वेद के पढ़ने से

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वंतदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ।।४९।।

।। सञ्जय उवाच ।।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ।।५०।।

।। अर्जुन उवाच ।।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ।।५१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ।।५२।।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ।।५३।।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।।५४।।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ।।५५।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां विश्वरूपदर्शनयोगो
नाम एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

oo

• थोड़ा पढ़ना और अधिक सोचना, कम बोलना और अधिक सुना यही बुद्धिमान बनने का उपाय है ।
–रवीन्द्र नाथ ठाकुर

हो तू व्यथित न मूढभावगत[१] अब देख हमारा विकट रूप।

तू प्रीतिसहित, भयरहित हुआ अब देख हमारा दिव्यरूप।।४९।।

।। सञ्जय बोले ।।

इस भाँति कृष्ण ने कह अर्जुन से दिखलाया पुनि वही रूप।
धीरज दे भयभीत पार्थ को, धर लिया पुनः निज मनुज रूप।।५०।।

।। अर्जुन बोला ।।

रूप देख यह मानव अतिशय सौम्य[२] आपका दिव्य जनार्दन।
अब मैं अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त हो गया हूँ प्रबुद्धमन[३] ।।५१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

मेरे जिस स्वरूप को तुमने देखा दुर्लभ उसका दर्शन।
इस स्वरूप के दर्शन के हित आकांक्षी[४] हैं सदा देवगण।।५२।।

नहीं वेद तप दान यज्ञ से देखा जाने में यह शक्य[५]।
तुम जिस प्रकार देखे मुझको वह रूप देखने को अशक्य[६] ।।५३।।

किन्तु अनन्य भक्ति के द्वारा मैं इस प्रकार से भी पाण्डव।
देखने, तत्त्व से तथा जानने, पाने प्रवेश में, भी सम्भव।।५४।।

मुझ हित कर्म परायण[७] मेरे, भक्त हमारा संग रहित।
अर्जुन, प्राप्त मुझे होता है सब जीवों में वैर रहित।।५५।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
विश्वरूपदर्शनयोग नामक ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। ११ ।।

००

---

१. अज्ञान से मोहित, २. मानव समान, ३. सावधान चित्त, ४. इच्छा करने वाले,
५. सम्भव, ६. असम्भव, ७. आश्रित

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ द्वादशोऽध्यायः

भक्तियोग

।। अर्जुन उवाच ।।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।।१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ।।२।।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।।३।।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।।४।।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।।५।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।६।।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।।७।।

आप जो देते हैं, वह सागर में बूंद समान ही हो सकता है, पर उस बूंद के बिना सागर अधूरा है । —मदर टेरेसा

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

बारहवाँ अध्याय

भक्तियोग

।। अर्जुन बोला ।।

जो इस प्रकार करते उपासना लगे आप में ही दृढ़तम[1] ।
भजते निराकार अविनाशी उनमें कौन योगविद उत्तम[2] ।।१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

नित्य लगे मुझको जो भजते करके मुझमें निज चित्त निरत ।
अतिश्रद्धा से युक्त हुए वे सर्वोत्तम योगी मेरे मत ।।२।।

अकथनीय अविनाशी अचिन्त्य, अव्यक्त है जो सर्वत्र स्थित ।
अचल एकरस अडिग ब्रह्म को ही भजते हैं जो श्रद्धान्वित[3] ।।३।।

इन्द्रियगण को कर संयत जो सबमें एक समान बुद्धिगत[4] ।
प्राप्त सदा मुझको ही होते जो सब जीवों के हित में रत ।।४।।

आसक्तचित्त जो निराकार में, उनको श्रम होता है विशेष ।
तनुधारी[5] को निराकार गति, पाने में होता अधिक क्लेश ।।५।।

सब कर्मों को जो अर्पित कर मुझमें मेरे हुए परायण ।
सब विधि मेरा चिन्तन करते मेरी उपासना में रत-मन ।।६।।

मृत्युरूप भव सागर से मैं बन जाता उनका उद्धारक ।
निस्तार[6] शीघ्र होता उनका, जो मेरे में ही मति धारक[7] ।।७।।

---

१. अति दृढ़ता से, २. योगियों में श्रेष्ठ, ३. श्रद्धावान, ४. बुद्धि रखते हुए, ५. शरीर धारण करने वाले, ६. उद्धार, ७. लगाने वाला

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।८।।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ।।९।।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।।१०।।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।।११।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिः अनन्तरम् ।।१२।।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ।।१३।।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।१४।।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।१५।।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।१६।।

---

० भगवान सब जगह मौजूद हैं, पर भक्त चाहिये। खम्भे कई हैं, पर प्रह्लाद चाहिये।

—स्वामी रामसुखदास

मुझमें ही तू चित्त लगाकर सदा बुद्धि मुझमें निवेश[१]।
इसके बाद तुम्हारा निश्चय, होगा मुझमें ही प्रवेश।।८।।

चित्त समाहित[२] करने में यदि तू होवे मुझमें असमर्थ।
अभ्यास योग से पाने की कर इच्छा अर्जुन इस अर्थ।।९।।

यदि न शक्य[३] अभ्यास हेतु भी कर्म करे सब मुझे समर्पित।
मेरे लिये कर्म करते भी सिद्धि प्राप्त होगा तू निश्चित।।१०।।

यदि तू इसमें भी अशक्य है मेरे लिंये कर्म करने हित।
करो त्याग फल कर्मों का मन बुद्धि आदि करके स्वाश्रित[४]।।११।।

ज्ञान अभ्यास से है उत्तम श्रेष्ठ ज्ञान से ध्यान विशेष।
त्याग कर्मफल श्रेष्ठ ध्यान से शीघ्र प्राप्त हो शान्ति अशेष।।१२।।

द्वेष रहित जीवों का प्रेमी हेतु रहित अति दयावान।
ममता अहंकार का त्यागी सम दुखसुख में क्षमावान[५]।।१३।।

योगी जो सन्तुष्ट निरन्तर है दृढ निश्चय संयतइन्द्रिय[६]।
मुझमें अर्पित बुद्धिचित्त जो, मेरा वह भक्त मुझे है प्रिय।।१४।।

जिससे उद्विग्न न हो कोई, न स्वयं किसी से उद्वेलित।
वह मुझको प्यारा है जो भय, अमर्ष हर्ष उद्वेग रहित।।१५।।

अपेक्षाहीन[७] जो चतुर शुद्ध है व्यथाहीन जो उदासीन।
त्यागी-कर्मारम्भ, मुझे प्रिय जिसका मन मुझमें सदा लीन।।१६।।

---

१. प्रवेश कराके, २. लगाना ३. समर्थ, ४. अपने आधीन, ५. क्षमा करने वाला,

६. इन्द्रियों को नियन्त्रित किया हुआ, ७. आवश्यकता रहित

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।१७।।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।।१८।।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।।१९।।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगो
नाम द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

●●

- मैं अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता। उसका अर्थ यह हुआ कि ५१ प्रतिशत लोगों की कल्पित भलाई के लिए ४९ प्रतिशत लोगों के हित का बलिदान किया जा सकता है अथवा किया जाना चाहिए। यह एक निर्मम सिद्धान्त है। इससे मानवता को नुकसान पहुँचा है। सबकी अधिकतम भलाई का सिद्धान्त ही एकमात्र सच्चा तथा उच्च मानवीय सिद्धांत है जो सर्वाधिक आत्म-त्याग द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। —महात्मा गांधी
- भगवान किसी स्थान पर नहीं, वह प्रत्येक के हृदय में है।
- जो जगत की जितनी सेवा करेगा, उतना ही सुख पायेगा।
- शान्ति तभी मिलती है, जब इच्छायें समाप्त हो जाती है।
- क्रोध कभी काबिल से काबिल आदमी को भी मूर्ख बना देता है।
- कायर तभी धमकी देता है, जब वह सुरक्षित होता है।
- आवश्यकता पड़ने पर ही किसी दोस्त का पता चलता है।

करता द्वेष न हर्षित होता गतइच्छा[1] जो शोकमुक्त।
अशुभ और शुभका त्यागी वह प्रिय है मुझको भक्तियुक्त।।१७।।

जो समचित्त मित्र बैरी में, सम जिसको अपमान मान।
व्यथारहित जो शीत उष्ण में, सुख-दुख में रहता समान।।१८।।

जिस किससे भी संतुष्ट शांत जो स्तुति निन्दा में भी समान।
जो स्थिर बुद्धि न गृहासक्त[2], है प्रिय मुझको वह भक्तिमान।।१९।।

इस कथित धर्ममय अमृत का सेवन करते हैं जो भी जन।
मुझ में श्रद्धा से युक्त हुए अतिशय प्रिय मेरे भक्त सुजन।।२०।।

ॐ तंत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भक्तियोग
नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १२ ।।

●●

१. जिसकी कोई कामना न हो, २. परिवार में आसक्ति वाला

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।।१।।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।२।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ।।३।।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।४।।

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ।।५।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।६।।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।७।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्म-मृत्युजरा-व्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।८।।

• संसार के लिये सेवा एवं परमात्मा के लिए प्रेम ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।
—स्वामी राम सुखदास

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

तेरहवाँ अध्याय

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

यह शरीर ही क्षेत्र नाम से जाता कहा है ऐसा जान।
क्षेत्रज्ञ उसे जो इसे जानता, कहते हैं सब ज्ञानवान ।।१।।

मैं पार्थ सभी क्षेत्रों में स्थित, मुझको ही क्षेत्रज्ञ जान।
क्षेत्रज्ञ क्षेत्र का सही ज्ञान मेरे मत में सम्पूर्ण ज्ञान ।।२।।

वही क्षेत्र अब जो है जैसा जिस विकारयुत जिससे वह।
कहता हूँ थोड़े में अर्जुन जिस प्रभाव वाला है यह ।।३।।

बहुत भाँति से ऋषियों द्वारा श्रुतिमन्त्रों[१] से विविध प्रकार।
निश्चित युक्तियुक्त[२] वचनों से ब्रह्-सूत्र से हुआ विचार ।।४।।

महाभूत[३] ये पांचो ही सब बुद्धि प्रकृति यह अहंकार।
दसों इन्द्रियाँ सभी मन सहित जो पाँच ये विषय विकार ।।५।।

इच्छा द्वेष और सुख दुख जो तथा चेतना धृति संघात।
सहित विकार क्षेत्र थोड़े में कहा गया है वह विख्यात ।।६।।

मान दम्भ[४] का त्याग अहिंसा क्षमा सरलता का संग्रह।
गुरु-उपासना शुद्धि तथा स्थिर इन्द्रिय मन शरीर निग्रह[५] ।।७।।

इन्द्रिय के विषयों से विरक्ति, अहंकार का भी परिहार[६]।
जन्म मृत्यु के सहित बुढ़ापे के गुण दोषों पर विचार ।।८।।

---

१. वेद के मन्त्रों, २. तर्क से निश्चित, ३. पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश,
४. दिखावा, ५. नियन्त्रण, ६. त्याग

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।९।।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।१०।।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।११।।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।।१२।।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।१३।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ।।१४।।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ।।१५।।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।।१६।।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।।१७।।

- आत्मा की आवाज सुनो, उस पर अमल करो। यही ईश्वरीय आदेश है।
- जो खुशी कल तुम्हें दुःखी करने वाली है, उसे आज ही त्याग दो।
- लोभी मनुष्य की कामना कभी पूरी नहीं होती।

अनासक्ति[१] सुत प्रिया आदि में, सबसे ममता त्याग महान।
प्रिय अप्रिय को पाकर भी जो चित्त सर्वदा एक समान।।९।।

मुझ में प्रेम अनन्यभाव[२] से भक्ति, दोष से सभी रहित।
निवास सदा एकान्त स्थल में जन समूह में रागरहित।।१०।।

अध्यात्मज्ञान[३] में नित्य लगन, उस परमतत्त्व का सत्यज्ञान।
यह सब ज्ञान स्वरूप सर्वथा जो विपरीत है वह अज्ञान।।११।।

ज्ञेय[४] कहूँगा जिसे जानकर करते हैं जन अमृत पान।
अनादि वाला परम ब्रह्म वह जिसका सत न असत अनुमान।।१२।।

हाथ चरण मुख नेत्र और शिर उसके सब ही ओर अवस्थित[५]।
हैं कर्ण आदि सब ओर सभी जो करके व्याप्त विश्व को स्थित।।१३।।

सब इन्द्रिय विषयों का ज्ञाता सभी इन्द्रियों से वह दूर।
अनासक्त वह सब जगधाता[६], निर्गुण गुण भोक्ता भरपूर।।१४।।

बाहर भीतर पूर्ण सभी के वही चराचर में भरपूर।
है अज्ञेय[७] सूक्ष्म होने से, अति समीप वह अतिशय दूर।।१५।।

अविभाजित[८] वह भूतों में है अलग अलग सा होकर स्थित।
वही ज्ञेय भर्ता संहर्ता वह ही सबका उद्भवकृत[९]।।१६।।

सभी ज्योति का परम प्रकाशक वह माया के पार अवस्थित।
ज्ञानगम्य[१०], वह ज्ञेय, ज्ञान है हृदय देश में सबके ही स्थित।।१७।।

---

१. आसक्त न होना, २. एक ही में स्थिरता, ३. आत्मा विषय का ज्ञान, ४. जानने योग्य, ५. स्थित हैं, ६. जगत का विधाता, ७. न जानने योग्य, ८. अखण्ड रूप से, ९. उत्पन्न करने वाला, १०. ज्ञान से ही जानने योग्य

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ।।१८।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ।।१९।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ।।२०।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।२१।।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।।२२।।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।।२३।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।।२४।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।२५।।

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद्विद्धि भरतर्षभ ।।२६।।

● मनुष्य को समय का उपयोग करना चाहिए। समय के मूल्य को पहचानो। जिसने समय को नहीं पहचाना उसने जीवन व्यर्थ गंवाया।

कहा गया संक्षेप क्षेत्र सह ज्ञेय ज्ञान का सत्य स्वरूप।

मेरे भक्त जानकर इसको पा लेते मेरा स्वरूप।।१८।।

प्रकृति पुरुष इन दोनों को ही जो आदि रहित तू पार्थ जान।
इन सभी विकारों गुण को भी प्रकृति से ही तू सम्भव मान।।१९।।

कार्य करण के कर्तापन में कही गई है प्रकृति हेतु वह।
भोक्तापन में सुखदुःख के त्यों कहा गया है पुरुष हेतु यह।।२०।।

होकर पुरुष प्रकृति में ही स्थित करता प्राकृत[१] गुण का भोग।
गुणों के संग से ही होता सत् असत् योनि में जन्म योग।।२१।।

साक्षी सम्मति दाता सबका भर्ता भोक्ता और महेश्वर।
परमात्मा भी कहा गया है पुरुष, देह में स्थित परमेश्वर।।२२।।

सही जानता प्रकृति पुरुष को जो प्राणी गुण सभी सहित।
सब प्रकार वर्तता[२] हुआ भी होता जीवन मृत्युरहित।।२३।।

देखता अन्तःस्थित[३] आत्मा को प्रज्ञा से कोई ज्ञानयुक्त।
ध्यान योग से अन्य पुरुष करते हैं दर्शन योगयुक्त।।२४।।

जो न जानते हुये तत्त्व भी अर्चन करते केवल सुनकर।
मृत्यु पार कर जाते वे भी सुनी हुई सी उपासना कर।।२५।।

अर्जुन, जितने स्थावर[४] जंगम[५] होते हैं प्राणी उत्पन्न।
उन सबको क्षेत्रज्ञ क्षेत्र से हुआ जान निश्चय उत्पन्न।।२६।।

---

१. प्रकृति से उपजे, २. व्यवहार करता, ३. हृदय में विराजमान, ४. जड़, ५. चेतन,

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ।।२७।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ।।२८।।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ।।२९।।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।३०।।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ।।३१।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।।३२।।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ।।३३।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।३४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

●●

● संसार का सबसे बड़ा लाभ-आत्मलाभ, याने अपने को जान लेना है ।

देखता सभी प्राणियों में जो परमात्मा को समता से स्थित।

होते हुये नाश भी सब में, अव्यय, उसकी दृष्टि व्यवस्थित[1] ।।२७।।

सब में समान परमेश्वर को, देख सभी में उसकी स्थिति सम।
स्वयं नष्ट करता न आपको, कर लेता है गति प्राप्त परम।।२८।।

जाते किये प्रकृति के द्वारा सभी कर्म ये सभी प्रकार।
आत्मा को कर्ता न देखता, वही देखता भली प्रकार।।२९।।

सब जीवों का पृथक भाव वह, सर्वथा देख एकत्व[2] प्राप्त।
उससे ही विस्तार सृष्टि का, हो जाता है पुनि ब्रह्म प्राप्त।।३०।।

निर्गुण अनादि होने से अर्जुन अविनाशी परमात्मा यह।
कायास्थित रहने पर भी कुछ करता नहीं न बँधता ही वह।।३१।।

सर्वव्याप्त आकाश सूक्ष्मता के ही कारण होता न लिप्त।
निर्गुण होने से आत्मा भी सर्वत्र स्थित न गुणों से लिप्त।।३२।।

जैसे इस सम्पूर्ण लोक को प्रकाशमान करता रवि एक।
प्रकाशमान यह एक आत्मा करता वैसे क्षेत्र प्रत्येक।।३३।।

ज्ञान नेत्र से देख इसे जो क्षेत्रज्ञ क्षेत्र का यह अन्तर।
सहित भूत इस प्रकृति मुक्ति को पाता है वह पद अविनश्वर[3] ।।३४।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग नामक तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १३ ।।

●●

---

१. वास्तविकतापूर्ण, २. एक ही में, ३. अविनाशी

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गुणत्रयविभागयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ।।१।।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।२।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।३।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।।४।।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।।५।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ।।६।।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ।।७।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।८।।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ।।९।।

● ज्ञानी को भगवान जैसा है, वैसा ही मिलता है। भक्त को जैसा वह चाहता है, वैसा मिलता है।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

चौदहवाँ अध्याय

गुणत्रयविभागयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

मैं पुनः कहूँगा सब ज्ञानों में सबसे उत्तम ज्ञान।
जिसे जानकर परमसिद्धि को प्राप्त हुये मुनि सकल सुजान।।१।।

इसी ज्ञान का आश्रय ले जो, मेरे स्वरूप को हुये प्राप्त।
वे आदि सृष्टि में जन्म न लेते, नहीं प्रलय में व्यथा[1] प्राप्त।।२।।

मेरी मूल प्रकृति ही अर्जुन सब जीवों का वासस्थान।
वहाँ चेतना बीज डालता जीव जन्म होता निदान[2]।।३।।

सभी योनियों में आकृतियाँ[3] सम्भव जो होतीं अर्जुन।
उनकी जननी प्रकृति योनि[4] है पिता बीजप्रद[5] मैं ही सुन।।४।।

उत्पन्न प्रकृति से ये तीनों सभी सत्व तम तथा रजोगुण।
इस देही अविनाशी को हैं बाँधते देह में वे अर्जुन।।५।।

वहाँ सत्वगुण है अति निर्मल प्रकाशकर सब विकृतिरहित[6]।
सुख साधन से बंधन करता अनघ सदा यह ज्ञान सहित।।६।।

तू सहतृष्णा[7] उत्पन्न जान अति रागस्वरूप रजोगुण।
कर्म कर्मफल संग बाँधता. यह देही को हे अर्जुन।।७।।

अज्ञानोत्पन्न[8] तमोगुण यह तो देहधारियों का मोहन।
अर्जुन, आलस्य प्रमाद नींद से करता है सबका बन्धन।।८।।

सुख में सत्व लगाता अर्जुन रज तो कर्मों में हे भारत।
प्राणी की प्रज्ञा को ढक कर तम तो करता है प्रमादरत।।९।।

---

१. कष्ट, २. परिणाम, ३. रूप, ४. माता, ५. बीज बोने वाला, ६. विकार रहित,
७. तृष्णा के सहित, ८. अज्ञान से उत्पन्न

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।

रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।१०।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।।११।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।१२।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ।।१३।।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलानप्रतिपद्यते ।।१४।।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ।।१५।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।।१६।।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।१७।।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।१८।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ।।१९।।

● माता-पिता प्रत्यक्ष देवता हैं। अन्य देवता की पूजा की जाय लेकिन माता-पिता की उपेक्षा करके नहीं।

दबाकर रज-तम दोनों को पाता है वृद्धि सत्व अर्जुन।

दबा सत्व-तम को रज बढ़ता, दबा सत्व-रज तथा तमोगुण।।१०।।

सब इन्द्रिय समूह में होता जब चेतनप्रकाश[1] उत्पन्न।
बढ़ा विवेक बुद्धिबल हो जब, तब समझो है सत्व प्रपन्न।।११।।

पार्थ लोभ आरम्भ कर्म का स्पृहा[2] अशान्ति प्रवृत्ति जब परम।
होवें यदि उत्पन्न सभी ये तब जानो रज बढ़ने का क्रम।।१२।।

अप्रकाश[3] प्रवृत्तिहीनता[4], होते प्रमाद मोह उत्पन्न।
अर्जुन तम के बढ़ जाने पर ये सभी दोष होते प्रपन्न।।१३।।

सदा सतोगुण के बढ़ने पर, देह त्याग करता देही जब।
श्रेष्ठ कर्म करने वालों के, शुभ लोकों को जाता है तब।।१४।।

मरता बढ़े रजोगुण में जो मनुज लोक में लेता जन्म।
बढ़े तमोगुण में जब मरता मूढ़ योनि में पाता जन्म।।१५।।

उत्तम कर्मों का निर्मलफल सात्विक सुख विरागयुत ज्ञान।
राजस कर्मों का फल दुख है तामस का फल है अज्ञान।।१६।।

सत्व ज्ञान उपजाता है यह, रज से निश्चित होता लोभ।
तम से अज्ञान प्रमाद मोह, जिनसे होता अतिशय क्षोभ[5]।।१७।।

सतोगुणी तो उच्चलोक में, मध्य में हैं रहते राजस।
नीच गुणों का आश्रय कर, गति नीच हैं पाते वे तामस।।१८।।

कर्ता कोई अन्य गुणों से, नहीं देखता है द्रष्टा[6] जब।
आत्मतत्त्व को, परे[7] गुणों से प्राप्त मुझे हो जाता है तब।।१९।।

---

१. सजग करने वाली बुद्धि, २. इच्छा, ३. मूढ़ता, ४. काम करने की अनिच्छा,
५. विकलता, ६. देखने वाला, ७. पृथक्

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।

जन्म-मृत्यु-जरा-दुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।।२०।।

।। अर्जुन उवाच ।।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।।२१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ।।२२।।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।।२३।।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।२४।।

मानापमानयोः तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।२५।।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।२६।।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।२७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां गुणत्रयविभागयोगो
नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

●●

● संसार में लाचार वह होता है, जिसको कुछ चाहिए। आत्मनिष्ठ सन्त को कुछ नहीं चाहिए।

उत्पन्न देह करने वाले इन तीनों गुण का लंघन कर।
होते अमृत, मुक्त जन्म-दुःख-मृत्यु-बुढ़ापा से होकर ।।२०।।

।। अर्जुन बोला ।।

प्रभु इन तीनों गुण से अतीत[1], होता किस लक्षण से युक्त।
आचरण पुनः करता कैसा, कैसे गुण से होता मुक्त ।।२१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

अर्जुन तीनों गुण कार्य सभी बन्धन, मोह-प्रवृत्ति[2]-प्रकाश[3]।
द्वेष नहीं करता आने पर, गये न पुनि आने की आश ।।२२।।

है रहता उदासीन सा स्थित, होता न गुणों से जो विचलित।
गुण का गुण में व्यवहार समझ, स्थिर रहता कभी न उद्वेलित ।।२३।।

आत्मभावरत सुख दुख में सम, जिसको पत्थर स्वर्ण समान।
एक दृष्टि जो प्रिय अप्रिय में, निन्दा स्तुति में सम विद्वान ।।२४।।

जो अपमान मान में भी सम जिसको वैरी मित्र समान।
कर्तापन अभिमान रहित को गुणतीत[4] कहते विद्वान ।।२५।।

मुझे अनन्य भक्ति से जो नर भजता रहता नित्य निरन्तर।
होता सुयोग्य वह ब्रह्मप्राप्ति के तीनों गुण का लंघन कर ।।२६।।

उस अविनाशी परमब्रह्म का, अमृत का भी मैं ही प्रश्रय[5]।
नित्यधर्म, आनन्द-एकरस हैं ये सब मेरे ही आश्रय ।।२७।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
गुणत्रयविभागयोग नामक चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।। १४ ।।

●●

---

१. परे, २. कार्यों में रुचि, ३. सुबुद्धि, ४. तीनों गुणों से परे, ५. आधार

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पुरुषोत्तमयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।१।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।।२।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।।३।।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।।४।।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।।५।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।६।।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।७।।

● हम भगवान का चयन करते हैं या संसार की भौतिकता का। यह इस पर निर्भर करता है कि हम भीतर से दुर्योधन हैं या अर्जुन। पहले जाँच लें।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

पन्द्रहवाँ अध्याय

पुरुषोत्तमयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

ऊपर मूल निम्नतर[1] शाखा कहते अक्षय पीपल महान।
पत्ते जिसके छन्द कहे, जो जानता वेद का उसे ज्ञान।।१।।

फैलीं डाली नीचे ऊपर गुण से बढ़ा विषयरस कोपर[2]।
ऊपर नीचे जड़ें चतुर्दिश फैलीं मनुजदेह-बन्धनकर[3]।।२।।

यहाँ न रूप प्राप्त उसका यह आदि न अन्त नहीं सदा स्थित।
इस अश्वत्थ[4] वृक्ष की दृढ़ जड़, विराग शस्त्र से कर खण्डित।।३।।

तब ढूँढ़े वह आदि परम पद जाकर जहाँ न पुनः आगमन।
आदि पुरुष की सदा शरण मैं जिससे प्रसृत[5] प्रवृत्ति[6] सनातन।।४।।

मान मोह आसक्ति कामनाहीन नित्य अध्यात्मनिरत।
सुख-दुख में सम द्वन्द्व रहित जो, वे ज्ञानी पाते अक्षय पद।।५।।

इसे न सूर्य प्रकाशित करता चन्द्र अग्नि का भी न काम।
जाकर जहाँ न पुनः लौटते वही हमारा परम धाम।।६।।

जीव लोक में जीव बना है मेरा ही यह अंश सनातन।
वही प्रकृति में स्थित करता है मन इन्द्रिय का आकर्षण।।७।।

---

१. उसके नीचे, २. फूल, ३. बाँधने वाली, ४. पीपल, ५. फैली हुई, ६. लगाव

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।।८।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।९।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।१०।।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।।११।।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।।१२।।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।।१३।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।१४।।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टोमत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।।१५।।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।१६।।

- विचार कीजिए—आज मुझसे किसी को कष्ट तो नहीं पहुँचा ?
- विचार कीजिए—अमुक मनुष्य ने कटु वाक्य कहे थे, मुझे उस पर क्रोध तो नहीं आया?

जिस शरीर को तजता देही करता जिसका पुनः वरण।
इनको लेकर के ही जाता किये पवन जिमि गन्ध आहरण[१] ।।८।।

जो ये कर्ण नेत्र रसना त्वक्[२] इनके संग में घ्राणशक्ति[३] मन।
इनके आश्रय से ही करता रहता है नित्य विषय सेवन।।९।।

तजते शरीर या रहते स्थित गुणों से मुक्त या भोगान्वित।
नहीं जान पाते अज्ञानी, जानता तत्त्व से उसे तत्त्ववित।।१०।।

सबके अन्तःस्थित आत्मा को नित्य देखते वे प्रयत्नरत।
अज्ञानी न अशुचि[४] मानस, वे चाहे कितने हों यत्नरित।।११।।

यह सारा जगत प्रकाशक जो है सूर्य में तेज महान।
पावक और चन्द्रमा में भी व्याप्त हमारा तेज जान।।१२।।

धारण करता भूतों को मैं ओज से धरा में प्रवेश कर।
करता पुष्ट वनस्पतियों को मैं ही रसमय शशि होकर।।१३।।

संयुक्त[५] अपान प्राण से मैं होकर के पुनि वैश्वानर।
चार भाँति के अन्न पचाता प्राणि देह का आश्रयकर।।१४।।

मुझसे ही स्मृति ज्ञान अपोहन[६] सदा हृदय में सबके स्थित।
कर्ता-वेदान्त, ज्ञेय श्रुति से, मैं ही हूँ परमतत्त्वविद्[७] ।।१५।।

दो प्रकार के पुरुष जगत में अविनाशी या नाशवान।
जीवात्मा अविनाशी उनमें, प्राणि देह सब नाशवान।।१६।।

---

१. खींचना, २. त्वचा, ३. सूँघने की शक्ति, ४. अशुद्ध, ५. जुटा हुआ, ६. कुतर्क हटाना, ७. परमतत्त्व को जानने वाला

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।१७।।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।१८।।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ।।१९।।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां पुरुषोत्तमयोगो
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

●●

- विचार कीजिये—यदि कोई भला काम मुझसे हो गया है, तो मेरे दिल में अभिमान तो नहीं आया?
- सोने चाँदी के कैलाश जितने बड़े असंख्य पर्वत हो जाएं, फिर भी लोभी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती; क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।
- जिसने इच्छाओं को जीत लिया, वही जितेन्द्रिय है, जिन है, ज्ञानी है।
- ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान और मोह के विसर्जन से आत्मा शाश्वत सुखस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।
- अज्ञान से मुक्त हो संयम-तप का आचरण करना तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है।
- जो अपने गुणों से प्रसिद्ध होता है, वह उत्तम है।
- जो अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह मध्यम है।
- जो अपनी ननिहाल के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह अधमाधम है।
- उत्तम मनुष्य मान चाहते हैं।
- मध्यम जन धन और मान चाहते हैं।
- अधम लोग धन चाहते हैं।
- अधमाधम मान खोकर भी धन चाहते हैं।

कहा गया परमात्मा अव्यय अन्य पुरुष जो इनसे उत्तम।
तीनों लोक प्रविष्ट हुआ वह जग पोषक स्वामी सर्वोत्तम।।१७।।

नाशवान से परम परे हूँ अव्यय जीवों से भी उत्तम।
इसी हेतु से लोक वेद में कहा गया मुझको पुरुषोत्तम।।१८।।

ज्ञानी जो इस भाँति जानता है मुझको पुरुषोत्तम भारत।
वह सब प्रकार से भजता मुझको होकर सर्वभावनारत[1]।।१९।।

परम गोप्य यह कहा गया जो मेरे द्वारा शास्त्र पार्थ।
भारत, इसे जानकर ज्ञानी हो जाता सब विधि कृतार्थ[2]।।२०।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में
पुरुषोत्तमयोग नामक पन्द्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १५ ।।

●●

१. सम्पूर्ण भावों से, २. सफल जीवन

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ षोडशोऽध्यायः

दैवासुरसम्पद्-विभागयोग

।। श्रीभगवानुवाच ।।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।१।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ।।४।।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।।५।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।७।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।।८।।

- विचार कीजिए—मैंने आज अनुचित प्रकार से कोई पैसा तो नहीं कमाया?
- विचार कीजिए—आज किसी परायी स्त्री पर मेरी कुदृष्टि तो नहीं पहुँची?

सोलहवाँ अध्याय

दैवासुरसम्पद्-विभागयोग

।। श्री भगवान बोले ।।

निर्भयता शुचिता मानस की, ज्ञान योग स्थिति सदा निरन्तर।
स्वाध्याय, तप, दान में अनुरति[1] सरल भावना यज्ञ शुभंकर[2] ।।१।।

त्याग-पिशुनता[3], क्रोधहीनता शांति अहिंसा सत्य त्याग।
जीवदया कोमलता लज्जा लोभ और चापल्यत्याग[4] ।।२।।

तेज धीरता क्षमा शुद्धता द्रोहहीनता न अतिमान।
दैवीसम्पद के अन्तर्गत पार्थ जन्म है इसे जान ।।३।।

दर्प क्रोध पाखण्ड परुषता[5] अति अभिमान और अज्ञान।
जन्म-संग आसुरी संपदा, अर्जुन उसके लक्षण जान ।।४।।

दैवी सम्पद मुक्ति हेतु है बन्धनकर आसुरी सतत।
शोक न कर है जन्म तुम्हारा पार्थ संपदा-दैवीगत ।।५।।

द्विविध सृष्टि जग में जीवों की दैवी तथा आसुरी सुन।
विस्तृत कही गई दैवी अब जान आसुरी को अर्जुन ।।६।।

नहीं प्रवृत्ति को नहीं निवृत्ति[6] को जान सकें आसुर स्वभावजन।
नहीं बुद्धि होती है उनमें नहीं सत्य शुभ तथा आचरण ।।७।।

है आश्रय रहित असत्य जगत, कहते वे इसे बिना ईश्वर।
काम बिना न अन्य कारण है, यह सम्भव संयोग परस्पर ।।८।।

---

१. रुचि, २. शुभ करने वाली, ३. निन्दा करना, ४. चञ्चलता छोड़ना, ५. कठोरता,
६. त्याग

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।९।।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।१०।।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।११।।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।१२।।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।१३।।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।१४।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।१५।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।१६।।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।१७।।

- विचार कीजिए—मैंने किसी के सामने अपनी प्रशंसा तो नहीं की?

- विचार कीजिए—आज कितना समय किस कार्य में व्यर्थ गंवाया?

इसी दृष्टि का अवलम्बन कर वे भावभ्रष्ट[1] जो बुद्धि रहित।

करते रहते उग्र कर्म हैं करने हेतु नाश जग का हित।।९।।

सदा अतृप्तकामना[2] वश हो जो मद दम्भ मान में रत।
करते रहते असत्कर्म हो मोहविवश वे कलुषितव्रत[3]।।१०।।

मरणकाल तक रहने वाली अगणित चिन्ताओं के आश्रित।
विषय भोग सुख में तत्पर वे सुख है यही मानते निश्चित।।११।।

अगणित आशापाश[4] बँधे वे काम क्रोध के हुए परायण।
भोग हेतु धन का अनीति से सञ्चय की इच्छा कर धारण।।१२।।

आज प्राप्त कर लिया इसे है और मनोरथ होगा प्राप्त।
इतना तो मिल चुका मुझे धन और भी कर लूँगा मैं प्राप्त।।१३।।

मार दिया है इस वैरी को औरों को भी कर दूँगा हत।
सब सिद्धियुक्त हूँ, मैं ईश्वर, बली सुखी हूँ और भोगरत।।१४।।

बड़ा धनी हूँ बड़ा कुटुम्बी, है अन्य कौन मेरे समान।
मुदित रहूँगा यज्ञदान कर, मन्दबुद्धि वह नर अज्ञान।।१५।।

विविध भाँति से चित्त भ्रमित, मोह जाल में हो आबद्ध[5]।
आसक्त विषय भोगों में रत, घोर नरक में होते बद्ध[6]।।१६।।

अपने को ही श्रेष्ठ जानते काम अर्थ मद से हो युक्त।
करते यज्ञ नाम भर को वे, पाखण्ड निरत विधि से विमुक्त[7]।।१७।।

---

१. भावहीन, २. न पूरी होने वाली इच्छा, ३. पाप की इच्छा वाले, ४. आशा के बन्धन, ५. बँधा हुआ, ६. बँधते हैं, ७. रहित

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।१८।।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।१९।।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।२०।।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।२१।।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।।२२।।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।२३।।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।२४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां दैवासुरसम्पद्-विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

●●

● विचार कीजिए—आज मुझसे किसी की बुराई तो नहीं हुई?

अहंकार बल दर्प[1] कामना क्रोध आदि के होकर आश्रित।
निन्दक द्वेषी वे मेरे, जो उनमें और अन्य में भी स्थित।।१८।।

क्रूर द्वेषरत अधम जनों को, इस जग में मैं बारंबार।
आसुर[2] अशुभ योनियों में ही डाला करता हूँ लगातार।।१९।।

पार्थ आसुरी योनि प्राप्त कर मूढ़ मुझे पुनि कभी न पाकर।
जन्म जन्म रहते उसमें या पाते हैं गति और निम्नतर[3]।।२०।।

तीन भाँति के आत्मविनाशक जो ये खुले नरक के द्वार।
इन काम क्रोध का लोभ सहित सदा करे प्राणी परिहार।।२१।।

इन तीनों नरक द्वार से जो मुक्त हो गया है अर्जुन नर।
निज कल्याण हेतु साधन कर पाता है पद परम परात्पर[4]।।२२।।

शास्त्र विधान छोड़ करता जो मूढ़ आचरण निज इच्छा वश।
नहीं सिद्धि मिलती है उसको नहीं शांति सुख सुगति विमल यश।।२३।।

अकर्त्तव्य कर्तव्य पुनः क्या इसमें शास्त्र प्रमाण निहित।
उसे जान तू नियत कर्म कर, जैसा शास्त्र विधान विहित।।२४।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में दैवासुरसम्पद्-विभागयोग नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६ ॥

●●

१. अपने को बहुत समझना, २. आसुरी, ३. निम्नकोटि की, ४. उत्तम गति

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रद्धात्रयविभागयोग

।। अर्जुन उवाच ।।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ।।१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ।।२।।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।३।।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ।।४।।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।५।।

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।६।।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।।७।।

आयुःसत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्याआहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।८।।

• विचार कीजिए—यदि लोग मुझे अच्छा कहते हैं, तो मैं अपने आपको महात्मा तो नहीं मानने लगा?

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

सत्रहवाँ अध्याय

श्रद्धात्रयविभागयोग

।। अर्जुन बोला ।।

शास्त्र विधान रहित श्रद्धा से जो जन करते हैं अर्चन।
निष्ठा सात्विक राजस तामस क्या है उनकी मधुसूदन।।१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

श्रद्धा होती तीन भाँति की प्राणी के स्वभाव उपमान[1]।
सात्विक राजस तामस अर्जुन, अब तू उनको मुझ से जान।।२।।

अर्जुन, अंतःकरण समान ही श्रंद्धा सबकी होती है यह।
श्रद्धायुक्त पुरुष यह अर्जुन जैसी श्रद्धा वैसा ही वह।।३।।

सात्विक देवों का अर्चन करते, यक्षराक्षसों का राजस।
पूजन करते भूतप्रेत का मनुज दूसरे हैं जो तामस।।४।।

घोर तपस्या करते हैं जो मनुज शास्त्र विधि से वर्जित।
अहंकार पाखण्ड युक्त वे काम राग बल से गर्वित[2]।।५।।

कायास्थित[3] सब भूतगणों को अज्ञानी करते वे कर्शित[4]।
अन्तःकरण में स्थित मुझको भी, असुर जान तू उनको निश्चित।।६।।

आहार भी तीन प्रकार के, सबको लगते हैं प्रिय अर्जुन।
यज्ञदान तप इसी भाँति से, उनका विभाग भी मुझसे सुन।।७।।

आयु बुद्धिबल स्वास्थ्य प्रदायक जो भोजन है अधिक प्रीतिकर।
रसमय चिकना स्थिर मनको प्रिय, वह सात्विक नर को है रुचिकर।।८।।

---

१. जैसी, २. घमण्डी, ३. शरीर में स्थित, ४. दुर्बल

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।।९।।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।१०।।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।।११।।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।१२।।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।१३।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।१४।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।।१५।।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।१६।।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।।१७।।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।।१८।।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१९।।

• विचार कीजिए—मेरा मन किसी स्वामीजी या सद्गुरु की पदवी तो लेना नहीं चाहता है?

कड़वा खट्टा लवणयुक्त अतिगरम तीक्ष्ण जो रूक्ष[१] दाहकर।
राजस स्वभाव वालों को प्रिय आहार रोग दुख चिन्ता कर।।९।।

भोजन अधपक रस रहित तथा जो बासी है दुर्गन्धयुक्त।
अशुद्ध और जूठा भी प्रिय जो तामस स्वभाव से मनुज युक्त।।१०।।

फल की इच्छा से रहित यज्ञ, विधि से अपना कर्तव्य मान।
जो किया जाय मन को स्थिर कर, तू यज्ञ सात्विकी उसे जान।।११।।

कामना सहित फल आशा से, जो यज्ञ किया जाता अर्जुन।
केवल दम्भ हेतु ही राजस, यज्ञ उसे कहते हैं सज्जन।।१२।।

जो विधिविहीन[२] दक्षिणाहीन शुभ मंत्रहीन बिन अन्नदान।
श्रद्धा से रहित किया जाता है उसको तामस यज्ञ जान।।१३।।

शुचिता[३] तथा सरलता, सुरद्विज गुरुज्ञानीजन का अर्चन।
ब्रह्मचर्य के साथ अहिंसा, शारीरिक तप का अर्जन।।१४।।

उद्वेग न करने वाली प्रिय वाणी जो सत्य और हितकर।
वाणी का तप कहते उसको जिसमें जप स्वाध्याय निरन्तर।।१५।।

मन की प्रसन्नता शांत भाव जो मौन और मन का निग्रह।
अन्तर्भावों[४] की शुचिता भी जिसमें मानस का तप है वह।।१६।।

अति श्रद्धा से तपा गया तप मानव द्वारा तीनों प्रकार।
फल की इच्छा रहित साधकों से, वह तप का सात्विक प्रकार।।१७।।

दम्भ मात्र को तपा गया तप सत्कार मान पूजा के हित।
राजस तप कहते हैं उसको फल जिसका है क्षणिक अनिश्चित।।१८।।

किया जाय जो पीड़ा पूर्वक ग्रहण मूढ़ता[५] करके हठवश।
अन्यों का अनिष्ट करने हित, कहते हैं उस तप को तामस।।१९।।

---

१. रूखा, २. विधि छोड़कर, ३. शुद्धता, ४. अन्तःकरण की, ५. मूर्खता

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।२०।।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।२१।।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।२३।।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।२४।।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ।।२५।।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।।२६।।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।।२७।।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।२८।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां श्रद्धात्रयविभागयोगो
नाम सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

●●

● चल दिया जो चीर कर अंधेर है, राह में [illegible] नहीं जो [illegible] है
जब तलक जलता रहे अंगार है, बुझ गया तो राख का इक ढेर है ।

कर्तव्य मानकर दिया जाय अनउपकारी को जो दान।
देश काल सब पात्र देखकर कहते उसको सात्विक दान।।२०।।

जो प्रत्युपकार[1] हेतु फल की, इच्छा से अथवा क्लेश सहित।
इस भाँति दान जो दिया जाय वह जानो राजस कोटि विहित।।२१।।

जो देश काल के योग्य न हो अथवा अपात्र को दिया दान।
सत्कार रहित अज्ञात व्यक्ति को तामस कहते हैं सुजान।।२२।।

ॐ तत् सत् यह नाम ब्रह्म का तीन भाँति से है वर्णित।
आदि सृष्टि में जिसके द्वारा ब्राह्मण श्रुति[2] यज्ञादि सृजित[3]।।२३।।

ॐ ऐसा उच्चारण करके सारी क्रिया यज्ञ तपदान।
विधिपूर्वक करते रहते हैं सदा वेदवादी[4] विद्वान।।२४।।

तत् 'यह सब वह ही है' फल को न चाहकर मुक्ति कामना हित।
इसी भाव से यज्ञ दान तप, आदि क्रियायें करते सत्कृत।।२५।।

सत् नाम ब्रह्म का श्रेष्ठ भाव, सद्भाव में करते हैं प्रयुक्त।
अर्जुन उत्तम कर्मों को भी करते हैं सत् शब्द से युक्त।।२६।।

उसके निमित्त सब किये कर्म भी वे कहलाते हैं सत्।
है यज्ञ दान तप में स्थिति जो उसको भी कहते हैं सत्।।२७।।

श्रद्धा विरहित किया गया सब, हवन दान तप कर्म पुण्यप्रद।
असत् कहा जाता है अर्जुन, जो नहीं लोक परलोक सुखद।।२८।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में श्रद्धात्रयविभागयोग
नामक सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १७ ।।

●●

१. उपकार का बदला चुकाने के लिए, २. वेद, ३. बनाये गये, ४. वेदों को कहने वाले

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अथाष्टादशोऽध्यायः

मोक्षसंन्यासयोग

।। अर्जुन उवाच ।।

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ।।१।।

।। श्रीभगवानुवाच ।।

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ।।२।।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ।।३।।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ।।४।।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।५।।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।६।।

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ।।७।।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।।८।।

• यह सुनिश्चित तथ्य है कि व्यक्ति का चरित्र बल और मनोबल न बढ़ सका तो वह सब कुछ साधन होते हुए भी दुर्बल है ।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः

अठारहवाँ अध्याय

मोक्षसंन्यासयोग

।। अर्जुन बोला ।।

महाबाहु संन्यास त्याग के, तत्त्व का जो सम्पूर्ण ज्ञान।
पृथक् पृथक् जानना चाहता, बतलावें मुझको भगवान।।१।।

।। श्री भगवान बोले ।।

सब काम्यकर्म[1] का पूर्णत्याग संन्यास उसे कहते सुजान।
त्याग सभी कर्मों के फल का त्याग हैं कहते कुछ विद्वान।।२।।

दोषयुक्त हैं सभी कर्म ही, त्याग उचित उनका निदान[2]।
यज्ञ दान तप कर्म त्यागने योग्य नहीं कुछ बुद्धिमान।।३।।

पहले त्याग विषय में निश्चय पुरुषश्रेष्ठ, तू मेरा सुन।
सात्विक राजस तामस तीनों भाँति त्याग के हैं अर्जुन।।४।।

यज्ञदान तपरूप कर्म ये नहीं त्याज्य[3], कर्तव्यमान।
बुद्धिमान जन को पवित्र करते हैं तप-यज्ञ-दान।।५।।

अन्य विहित कर्तव्य कर्म भी फलासक्ति[4] से रहित यथार्थ।
करे सदा यह मत मेरा है निश्चित किया हुआ जो पार्थ।।६।।

कर्तव्य कर्म जो सदा विहित हैं नहीं त्यागना उन्हें उचित।
उनका त्याग मोहवश करना तामस त्याग सदा अविहित[5]।।७।।

कर्म सभी हैं क्लेश रूप यह जान देह दुख से जो त्याग।
नहीं त्याग फल प्राप्त उसे होता करके भी राजस त्याग।।८।।

---

१. फल की इच्छा से किया गया कार्य, २. उपचार, ३. त्याग के योग्य, ४. फल की इच्छा से, ५. अयोग्य

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ।।९।।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ।।१०।।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।।११।।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित् ।।१२।।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।।१३।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।१४।।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ।।१५।।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ।।१६।।

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।१७।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।।१८।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ।।१९।।

● श्रद्धा ज्ञान देती है, नम्रता मान देती है और योग्यता स्थान देती है ।

अर्जुन जो कर्तव्य कर्म निज करता उनको मान नियत[1]।
फल की आशा छोड़ त्याग वह ही सात्विक है मेरे मत।।९।।

द्वेष न करता अहित कर्म में हित में रहता अनासक्त।
संशयरहित सुबुद्धिमान वह त्यागी सदा सत्वगुण युक्त।।१०।।

सम्भव नहीं देहधारी से करना सभी कर्म का त्याग।
त्यागी सही वही अर्जुन जो, सभी कर्मफल करता त्याग।।११।।

उत्तम अधम और मिश्रित फल, कर्म के हैं जो तीन प्रकार।
त्यागहीन मरने पर पाता, त्यागी पाता न किसी प्रकार।।१२।।

महाबाहु! ये पाँच हेतु हैं कर्मसिद्धि में मुझसे जान।
सांख्य शास्त्र में कहे गये जो, कर्म सिद्धि में कारण मान।।१३।।

भिन्न भिन्न विधि के सब साधन कर्ता और जो अधिष्ठान[2]।
चेष्टा पृथक् अनेक भाँति की, यहाँ पाँचवाँ दैव महान।।१४।।

मन वाणी शरीर से जो भी करता है प्रारम्भ कर्म नर।
न्यायानुसार विपरीत तथा हैं कारण उसके पाँच प्रवर[3]।।१५।।

इतने पर भी यही मानता 'केवल आत्मा की ही कृति यह'।
नहीं समझता परम सत्य को अशुचि बुद्धि मति मन्द मूढ़ वह।।१६।।

कर्तापन का भाव न जिसमें, निर्लिप्त[4] बुद्धि सबमें समान।
इन सब लोकों को हतकर भी नहीं मारता बंधता न जान।।१७।।

ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय ये तीनों कर्म के प्रेरक तीन प्रकार।
कर्ता साधन क्रिया तीन ये होते कर्म के संग्रहकार[5]।।१८।।

ज्ञान कर्म कर्ता भी हैं ये गुण भेदों से त्रिविध भाँति सुन।
सांख्य शास्त्र में कहे गये हैं जैसे भली-भाँति ये अर्जुन।।१९।।

---

१. अपने लिए निश्चित, २. आधार, ३. [illegible], ४. आसक्तिहीन, ५. करने वाले

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।२०।।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।।२१।।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।।२३।।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।।२४।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।।२५।।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ।।२६।।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ।।२७।।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।।२८।।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ।।२९।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।३०।।

- धर्म में नीति नहीं है तो धर्म विधुर है और नीति में धर्म नहीं तो नीति विधवा है ।
- सहयोग और समन्वय का मार्ग ही श्रेयस्कर होता है ।

प्राणिवर्ग में सभी देखता अव्यय भाव को जिससे एक।
विभाग रहित. भी पृथक् पृथक् सा उसे जान सात्विक विवेक ।।२०।।

जिससे सम्पूर्ण प्राणियों में, विविध भाव का पृथक भान[1]।
होता है, उसको तू अर्जुन, निःसंदेह ही राजस जान।।२१।।

कार्यरूप इस एक देह में पूर्ण सरिस आसक्ति भान।
तत्त्व अर्थ से रहित तुच्छ अति ज्ञान तामसी उसे जान।।२२।।

नियत कर्म निःसंग[2] जो होता रागद्वेष से सतत हीन।
फल की इच्छा रहित पुरुष को, कहते हैं सात्विक प्रवीण।।२३।।

जो कर्म भोगफल इच्छा से ही किया जाय सह-अहंकार।
बहुत परिश्रम से जो सम्भव कहते उसको राजस प्रकार।।२४।।

परिणाम हानि हिंसा न देख या जो अपना सामर्थ्य कर्म।
मोह-मात्र से किया जाय जो, कहते उसको तामस कर्म।।२५।।

जो अहंकार आसक्ति रहित उत्साह धीरता से पूरित।
असिद्धि सिद्धि परिणाम में सम, उसको कहते सत्वसमन्वित[3] ।।२६।।

रागी कर्म फलों का इच्छुक लोभी अशुद्ध हिंसक मानस।
हर्ष शोक से सदा युक्त जो उसको कहते कर्ता राजस।।२७।।

शिक्षा रहित दुष्ट जड़ घाती परहितघ्न[4] आलसी अयुक्त[5]।
कर्ता तामस कहलाता वह दीर्घ तर्कयुत विषाद-युक्त।।२८।।

बुद्धि और धृति भेद गुणों से तीन भाँति के मुझ से सुन।
जो सम्पूर्ण विभाग युक्त अब कहा जायगा हे अर्जुन।।२९।।

क्या अकार्य है पुनः कार्य क्या प्रवृत्ति-निवृत्ति भयाभय[6] पार्थ।
बन्धन-मोक्ष ज्ञान दोनों का, जानती बुद्धि सात्विक यथार्थ।।३०।।

---

१. बोध, २. आसक्तिरहित, ३. साथ, ४. सतोगुणी, ५. दूसरे का हित नष्ट करने वाला, ५. संयमहीन, ६. डर और निडरता

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।।३१।।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।।३२।।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।३३।।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ।।३४।।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ।।३५।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ।।३६।।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ।।३७।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।।३८।।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।।३९।।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ।।४०।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।।४१।।

● संसार वृक्ष है। वृक्ष का मूल भगवान हैं। मूल को जल दो, वृक्ष खिल जाता है। पत्तों पर पानी डालने की जरूरत नहीं।

कार्याकार्य अधर्म धर्म को सब प्रकार से ही अयथार्थ[1] ।
जिसके द्वारा जाना जाता है वह बुद्धि राजसी पार्थ ।।३१।।

धर्म मानती है अधर्म को तम के गुण से जो आच्छादित[2] ।
सभी अर्थ विपरीत जानती वही बुद्धि निश्चित तमसावृत[3] ।।३२।।

गति अनन्य धारणाशक्ति से धारण करती है जो यथार्थ ।
सभी क्रिया मन इन्द्रिय प्राणों की धृति सात्विकी निश्चित पार्थ ।।३३।।

अर्जुन जिस धृति से धारण नर करता धर्म और कामार्थ[4] ।
रागयुक्त, फल की आशा से वह धृति राजस जानो पार्थ ।।३४।।

जिस धारणा शक्ति से निद्रा भय दुख चिन्ता प्रमाद पार्थ ।
नहीं छोड़ता दुष्टबुद्धि नर तमसावृत धृति, नहीं-यथार्थ ।।३५।।

भरत श्रेष्ठ, अब मुझसे सुन तू सुख के हैं जो तीन प्रकार ।
अभ्यासयुक्त रमता जिसमें दुख से सब हो जाता पार ।।३६।।

गरल[5] समान आदि में जिसके परिणाम[6] किन्तु अमृतसमान ।
कहा गया सुख सात्विक उसको आत्मा बुद्धि प्रसाद से जान ।।३७।।

इन्द्रिय-विषययोग से सम्भव आदि में अमृत के समान ।
परिणाम गरल सम है जिसका राजस सुख तू उसको मान ।।३८।।

भोगकाल परिणाम उभय में आत्मा को करता जो मोहित ।
निद्रालस्य प्रमाद समुद्भव[7] वह सुख तामस सदा विगर्हित[8] ।।३९।।

न पृथ्वी आकाश में अथवा देवलोक में जीव उपस्थित ।
उत्पन्न प्रकृति के जो तीनों गुण से प्राणी हो सके रहित ।।४०।।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के कर्म भी पृथक्-पृथक् अर्जुन ।
उनके स्वभाव गुण के कारण होते हैं उन्हें भी अब सुन ।।४१।।

---

१. सही नहीं, २. ढकी, ३. तमोगुणी, ४. काम और अर्थ ५. विष, ६. फल, ७. उत्पन्न, ८. त्यागने योग्य

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।४२।।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।४३।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।४४।।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।।४५।।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।४६।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।४७।।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।।४८।।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति ।।४९।।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।।५०।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।।५१।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।५२।।

● जो अन्य को हानि पहुँचा कर अपना हित चाहता है, वह मूर्ख अपने लिये दुःख के बीज बोता है ।

शम दम तप सब शुद्धि सरलता क्षमाभाव से भी सम्पन्न।
आस्तिकता[१] विज्ञान ज्ञान ये ब्राह्मण कर्म स्वभावोत्पन्न[२]।।४२।।

धैर्य शूरता तेज चतुरता रण से न पलायन[३], उचित दान।
स्वामीभाव बनाये रखना, क्षत्रिय कर्म स्वभाव से जान।।४३।।

कृषि गोपालन वणिककार्य ये स्वाभाविक ही वैश्यकर्म।
सब वर्णों की सेवा करना शूद्रों का यह परम धर्म।।४४।।

लगा हुआ निज निज कर्मों में सिद्धि प्राप्त कर लेता है नर।
सुन सिद्धि प्राप्त करता जैसे वह, निज कर्मो में तत्पर होकर।।४५।।

जिससे सबजीवों की प्रवृत्ति, जिससे यह सारी सृष्टिव्याप्त।
निज कर्मों से पूजन कर उसका नर करता है सिद्धि प्राप्त।।४६।।

विधि से सेवित अन्य धर्म से धर्म विगुण[४] भी निज श्रेयस्कर।
नहीं प्राप्त होता नर अघ को, प्रकृति नियत निज कर्मों को कर।।४७।।

दोष सहित भी सहज कर्म का त्याग न यहाँ उचित कुन्तीसुत।
जैसे अग्नि धूम से आवृत[५] तथा कर्म हैं सभी दोष युत।।४८।।

कामना हीन आसक्ति रहित जिसके वश में निज अन्तःकरण।
परमसिद्धि निष्कर्म सांख्य से, योगी कर लेता यहीं वरण।।४९।।

सिद्धि प्राप्त कर ब्रह्म प्राप्त वह जैसे होता मुझसे सुन।
ज्ञानयोग की निष्ठा अन्तिम, कहता संक्षेप उसे अर्जुन।।५०।।

अतिशुद्ध बुद्धि से युक्त हुआ धृति से आत्म नियंत्रण कर।
शब्द आदि सब विषय त्यागकर रागद्वेष को भी तजकर।।५१।।

लघु भोजन एकान्तवास मन-काय वचन को संयतकर।
ध्यानयोग में नित्य परायण दृढ़ विराग का आश्रय कर।।५२।।

---

१. ईश्वर और पुनर्जन्म में विश्वास, २. स्वभाव से उत्पन्न, ३. भागना, ४. विना किसी गुण के, ५. घिरा

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।५३।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।।५४।।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।५५।।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।।५६।।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ।।५७।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।५८।।

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।।५९।।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।६०।।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।।६१।।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।६२।।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।६३।।

● जीवन का रहस्य ही यह है कि सुख से सटो मत और दुःख से हटो मत।

काम, क्रोध, बल, अहंकार तज दर्प त्यागकर सब उपभोग्य[१] ।
ममता रहित शांत होकर वह होता ब्रह्म प्राप्ति के योग्य ।।५३।।

मन में प्रसन्न वह ब्रह्म निरत, नहीं कामना करता न शोक ।
समभाव हुआ सब जीवों में वह पराभक्ति पाता विशोक ।।५४।।

पराभक्ति से मैं जो, जैसा-जितना करता तत्त्व से ज्ञान ।
तत्क्षण प्रवेश कर जाता मुझमें इस प्रकार से मुझे जान ।।५५।।

सदा सभी कर्मों को करता हुआ हमारे नित्य परायण ।
करुणा से मेरी पाता है अविनाशी पद परम सनातन ।।५६।।

हुये परायण मेरे, मुझमें कर्मों को मन से अर्पण कर ।
मुझमें ही मनवाला होकर बुद्धियोगं का अवलम्बन[२] कर ।।५७।।

चित्त निहित कर मुझमें मेरी कृपा से संकट होंगे नष्ट ।
अहंकार वश यदि न सुनेगा, तू परमार्थ से होगा भ्रष्ट ।।५८।।

'नहीं करूँगा युद्ध' मानता अहंकार का यदि ले आश्रय ।
प्रकृति लगा देगी तुमको वह मिथ्या होगा तेरा निश्चय ।।५९।।

निज स्वभाव से कर्मपाश[३] में बंधा करेगा तू वह परवश ।
नहीं चाहता कुन्तीसुत, तू जिसको करना मात्र मोहवश ।।६०।।

अर्जुन, सभी प्राणियों के उर[४] अन्तर ईश्वर होकर स्थित ।
घुमाता सभी को माया से कायारूपी यंत्र में स्थित ।।६१।।

तू सब भाँति, भाव से उसकी शरण ग्रहण कर भारत ।
करुणा से उसकी पा लेगा परमशांति तू वह शाश्वत ।।६२।।

इस प्रकार तुमको मैंने कह दिया ज्ञान जो गुह्य[५] गुह्यतर ।
भली भाँति इस पर विचार कर, जैसी इच्छा पुनि वैसा कर ।।६३।।

---

१. भोग करने योग्य, २. आश्रय, ३. कर्म का बन्धन, ४. हृदय, ५. रहस्य

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।६४।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच।।६६।।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।६७।।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।६८।।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।।६९।।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं सम्वादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।।७०।।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।।७१।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय।।७२।।

।। अर्जुन उवाच ।।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।७३।।

• स्वार्थ ही विष और त्याग ही अमृत है।

सभी गोप्य से गोपनीय अति वाणी मेरी और पुनः सुन।
तू अतिशय प्रिय है मेरा मैं तेरे हित कहता वह अर्जुन।।६४।।

मेरे में मन, मेरा पूजन, मेरी भक्ति, मुझे प्रणाम कर।
तू होगा प्राप्त मुझे, मेरा प्रिय, कहता सत्य प्रतिज्ञा कर।।६५।।

मेरी एक शरण आजा तू, सब धर्मों को मुझमें तजकर।
मैं मुक्त तुझे सब पापों से कर दूँगा अर्जुन, शोक न कर।।६६।।

जो न तपस्वी नहीं भक्त है सुनने की कामना रहित।
दोषदृष्टि रखता हो मुझमें उससे कहना नहीं उचित।।६७।।

मेरे भक्तों में इसे कहेगा गोपनीय जो यह रहस्यमय।
वह मेरी पराभक्ति करके मुझको ही प्राप्त करेगा निश्चय।।६८।।

मेरा प्रियकारी[१] कहीं नहीं मानवगण में उससे बढ़कर।
न भविष्य में ही होगा उससे कोई मेरा प्रियतर।।६९।।

संवाद पढ़ेगा हम दोनों का जो यह धर्म-ज्ञान सम्मत।
ज्ञान यज्ञ से उससे पूजित होऊँगा मैं, मेरा यह मत।।७०।।

केवल इसे सुनेगा भी, तज दोषदृष्टि जो श्रद्धावान।
जायेगा होकर पापमुक्त, उस लोक जहाँ वे पुण्यवान।।७१।।

अर्जुन सुना इसे तुमने क्या होकर के एकाग्रचित्त।
क्या मोह तुम्हारा नष्ट हुआ, संशय सब अज्ञान जनित।।७२।।

।। अर्जुन बोला ।।

पा कृपा आपकी विगत[२] मोह स्मृति प्राप्त हुआ मैं मधुसूदन।
स्थित हूँ सब संदेह रहित मैं, प्रभु का वचन करूँगा पालन।।७३।।

---

१. प्रिय करने वाला, २. नष्ट

।। सञ्जय उवाच ।।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ।।७४।।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ।।७५।।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य सम्वादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ।।७६।।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ।।७७।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।७८।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतायां मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

●●

● सतत नाम-स्मरण भगवान का सान्निध्य प्राप्त कराने में पूर्ण समर्थ है ।

।। सञ्जय बोले ।।

वासुदेव[१] का और महात्मा अर्जुन का यह इस प्रकार।
रोमांचक संवाद सुना मैं दिव्य और अद्भुत अपार।।७४।।

व्यास कृपा से सुन पाया मैं गोपनीय संवाद परम।
साक्षात श्रीकृष्ण को कहते योगेश्वर को योग स्वयम।।७५।।

मैं पुनः पुनः कर स्मरण वही संवाद दिव्य अतिशय उदार।
पुण्य रूप केशव अर्जुन का राजन हर्षित हूँ बार-बार।।७६।।

अद्भुत रूप स्मरण कर हरि का बार-बार अति दिव्य अनूप।
मैं विस्मित[१] हूँ बार-बार पुनि हर्षित भी अति कुरुकुलभूप[२]।।७७।।

जहाँ हैं योगेश्वर श्रीकृष्ण, धनुर्धर जहाँ है पाण्डुतनय।
वहीं पर है श्री विजय, विभूति, नीति, सर्वदा, मेरा निश्चय।।७८।।

ॐ तत् सत् इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में मोक्षसंन्यासयोग नामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।। १८ ।।

●●

---

१. श्रीकृष्ण, २. आश्चर्यचकित, ३. धृतराष्ट्र

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते।
हरि-हिय कमल-विहारिणि, सुन्दर सुपुनीते।। जय०।।
कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि, कामासक्तिहरा।
तत्त्वज्ञान-विकासिनि, विद्या ब्रह्म परा।। जय०।।
निश्चल-भक्ति-विधायिनि, निर्मल मलहारी।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि, सब विधि सुखकारी।। जय०।।
राग-द्वेष-विदारिणि, कारिणि मोद सदा।
भव-भय-हारिणि, तारिणि परमानन्दप्रदा।। जय०।।
आसुर-भाव-विनाशिनि, नाशिनि तम रजनी।
दैवी सद्गुणदायिनि, हरि-रसिका सजनी।। जय०।।
समता-त्याग सिखावनि, हरि-मुखकी बानी।
सकल शास्त्र की स्वामिनि, श्रुतियोंकी रानी।। जय०।।
दया-सुधा बरसावनि मातु ! कृपा कीजै।
हरिपद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै।। जय०।।